बदलते समय में नारीवादी आन्दोलन के समक्ष चुनौतियों

जेण्डर कोर्स

सआवासीय
२४ से २८ अप्रैल २०१२
संस्कृति केन्द्र

जेंडर कोर्स
24 से 28 अप्रैल 2012
संस्कृति केन्द्र

तारीख व समय	सत्रा विजय	विवरण व प्रक्रिया	संदर्भ टीम
२४ अप्रैल सुबह	कार्यशाला पृष्ठभूमि/ परिचय	* स्वागत * परिचय - संदर्भ व्यक्ति, कोर्स व उद्देश्य * विस्तृत प्रतिभागी परिचय » आइस ब्रेकिंग » अपेक्षाएँ, दुविधा व योगदान » बुनियादी सिद्धांत सोश्योग्रामिंग	मधु
२४ अप्रैल दोपहर से २५ अप्रैल दोपहर	जेंडर की अवधारणा व आज के समय में पितृसत्ता के बदलते स्वरूप	* जेंडर की पहचान का व्यक्तिगत अनुभव * जेंडर व्यवस्था प्रणाली में औरतों, मर्दों व तीसरे जेंडर का समाजीकरण * पितृसत्ता व विभिन्न संरचनाएं * पितृसत्ता - औरतों पर इसका नियंत्रण व इसके परिणाम * पितृसत्ता का अन्य व्यवस्थाओं के साथ अन्तर्सम्बन्ध व विश्लेषण * पुरुषत्व	कमला
२५ अप्रैल दोपहर	महिला हिंसा	» हिंसा की परिभाषा » हिंसा हमारे निजी जीवन में » हिंसा के ढांचागत कारक	जया और मधु

२६ अप्रैल पहला सत्र	शहर पर अधिकार	* महिला सुरक्षा पृष्ठभूमि * जेंडर के साथ सार्वजनिक स्थल कैसे जुड़ता है। * रणनीति	अनुप्रिया
तारीख व समय	सत्र विजय	विवरण व प्रक्रिया	संदर्भ टीम
26 अप्रैल दोपहर सत्र	महिला स्वास्थ्य	* स्वास्थ्य नीतियां किस के लिए व कैसी * महिला शरीर पर गर्भनिरोधक नीतियों के प्रभाव	दीपा
27 अप्रैल सुबह	राज्य द्वारा महिलाओं पर दबाव	» अलग-अलग राज्यों में महिलाओं की स्थिति » राजनीति में महिलाओं की हिस्सेदारी	उमा चक्रवर्ती
27 अप्रैल दोपहर	महिला अधिकार व सशक्तिकरण	* भोजन का अधिकार * महिला सशक्तिकरण–महिला रोजगार के विभिन्न आयाम	सैजल दंड
२८ अप्रैल सुबह	महिला आंदोलन में विकास की धाराएं	» हाशिए पर पहचान कितने विकास की धारा में – नीतियों का विश्लेषण » महिला आंदोलन द्वारा उठाये गये महिला व उसके बहुआयामी पहचानों के मसले व चुनौतियाँ	सुनीता धर
२८ अप्रेल दोपहर	समापन सत्र		मधु

24 अप्रैल, प्रथम सत्र

कार्यशाला पृष्ठभूमि व परिचय

मधु

लम्बे समय से जागोरी द्वारा नियमित तौर पर चलाई जाने वाली विभिन्न कार्यशालाओं की श्रृंखला में इस वर्ष २४ से २८ अप्रैल तक पांच दिन का जेण्डर कोर्स आयोजित किया गया। इस कोर्स में देश के विभिन्न राज्यों- उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा तथा दिल्ली के साथ-साथ हिन्दुस्तान के पड़ोसी देश नेपाल से भी विभिन्न महिला संगठनों, गैर-सरकारी संगठनों व सामुदायिक संगठनों ने अपनी भागीदारी निभाई। लगभग २२ संस्थाओं से आए ३२ सहभागियों द्वारा जेंडर की अवधारणा व उससे संबंधित विभिन्न सत्तात्मक ढाँचों को नारीवादी नज़रिए से सोचने-समझने का प्रयास किया।

जेण्डर कोर्स २०१२ के शुरूआती सत्र में मधु ने जागोरी की ओर से सभी सहभागियों का स्वागत किया तथा जागोरी का परिचय देते हुए उन्होंने बताया कि जागोरी मुख्यतः महिला हिंसा के खिलाफ़ काम करती है- जिसके अतंर्गत हिंसा के बारे में महिलाओं की चेतना का विकास व जागरुकता का निर्माण, शिक्षा, स्वास्थ्य, विकास आदि पर ध्यान दिया जाता है। इसके साथ ही यह महिलाओं के अन्य मुद्‌दों, महिलाओं के व्यक्तिगत व सामुहिक सशक्तिकरण आदि मुद्‌दों पर काम करती है।

जागोरी द्वारा समय-समय पर नारीवादी मुद्दों पर रचनात्मक सामग्री का निर्माण व वितरण तथा नारीवादी चिन्ताओं के बारे में जानकारी व ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए कार्यशाला आदि का आयोजन करके महिलाओं के समूहों, गैर सरकारी संगठनों आदि की ज़रूरतों को पूरा किया जाता है। इन सब के साथ जेण्डर काउन्सलिंग का काम भी जागोरी करती है। अपने विभिन्न कामों के द्वारा जागोरी महिलाओं के अधिकार व जेण्डर समानता की हिमायत/वकालत करती है।

जागोरी के परिचय के बाद मधु ने सभी सहभागियों को परिचय देने के लिए कहा। परिचय सहज व सीध नहीं था, यह एक खेल के माध्यम से हुआ जिसमें सभी को अपना-अपना एक जोड़ीदार चुन कर उसे अपने बचपन के सपने के बारे में बिना बोले केवल अभिनय द्वारा बताना था। और उसके बाद सभी को अपने नाम व संस्था के साथ-साथ अपने जोड़ीदार के सपने के बारे में सभी को बताना था। इस असहज परिचय ने सभी को एक-दूसरे के साथ सहज कर दिया। इसके तुरन्त बाद मधु ने सभी सहभागियों को संबोधित करते हुए पूछा कि इस कार्यशाला में आने से पहले या आने के बाद भी इस ट्रेनिंग से आप लोगों के मन में क्या शंकाएं हैं? क्या उम्मीदें हैं? तथा क्या योगदान भागीदारियों द्वारा होगा?

इन तीन प्रश्नों पर विचार करके सदन में रखने को कहा।

शंकाओं में – बदलाव कैसे व कब होगा, पुरुषों का ट्रेनिंग में सम्मिलित होना, घर–परिवार को जोड़ने–तोड़ने की शंका, दुनिया में बदलाव के साथ खुद में बदलाव ला पाने की क्षमता पर शंका, पीछे से घर व बच्चों की फिक्र व चिन्ता आदि शंकाएं उभर कर आईं।

कई उम्मीदें भी लेकर लोग इस कार्यशाला में आए थे, जैसे–विकास के मुद्दे को जेण्डर की समझ के साथ देखना व समझना, सशक्तिकरण, पित्तृसत्ता पर पूर्ण जानकारी ले कर जाना, समाज में होने वाली हिंसा से मुक्ति की रणनीतियों की समझ बढ़ाना, जागोरी व विभिन्न संस्थाओं के अनुभवों को जानना, लोगों तक पहुँचने की प्रक्रिया को जानना आदि।

शंकाओं व उम्मीदों के साथ–साथ योगदान के वादे के तौर पर सहभागियों ने कहा कि वह अपना समय, साथ, अनुभव, भागीदारी निभाएंगे तथा गाने, खेलों व अपनी संस्था की रिसोर्स सामग्री के वितरण द्वारा भी योगदान देंगे।

सभी सहभागियों द्वारा तीनों प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट करने के बाद मधु जी ने सहभागियों से योगदान की उम्मीद जाहिर करते हुए कहा कि इन पांच दिनों के दौरान सभी सहभागियों द्वारा एक दूसरे के सम्मान, समानता व गोपनीयता को बनाए रखने के योगदान की उम्मीद जागोरी करती है। परिचय, उम्मीदों, योगदान व शंकाओं के बाद मधु ने जेण्डर कोर्स की पृष्ठभूमि मुख्य पांच उद्देश्यों को पढ़ा तथा सभी सहभागियों को उससे अवगत करवाया।

24 अप्रैल, दोपहर का सत्रा

जेण्डर की अवधरणा

कमला भसीन

सत्र की शुरुआत मधु द्वारा कमला भसीन के परिचय और साथ ही उनके जन्मदिन होने के उपलक्ष्य पर उन्हें बधईयां देकर हुई। कमला भसीन ने अपने वक्तव्य की शुरूआत इस बात से की कि ‘‘मैं आपको कोई लेक्चर देने नहीं आई हूं। यह सहभागिता वाला प्रशिक्षण है, हमको हर एक को रिसोर्स पर्सन समझना है और चर्चा करते हुए अपनी समझ को पुख्ता करना है। इसके साथ ही एक बार फिर से सहभागियों के साथ उन्होंने परिचय का दौर चलाया जिसमें सभी सहभागियों ने अपना नाम, संस्था का नाम व किस राज्य से आए हैं, इसकी जानकारी दी। परिचय के इस दौर में कमला जी ने अपने परिचित अन्दाज में किस्सों व मजाक के साथ सहभागियों को सहज बनाया ताकि वे खुलकर इस प्रक्रिया में भागीदारी कर सकें।

सोश्योग्रामिंग

परिचय खत्म होने के बाद सभी सहभागियों को सोश्योग्रामिंग की गतिविधि करवाई। जिसमें सभी के विभिन्न पहचानों के आधार पर समूह बनवाए। इन गतिविधि में पहले देश के आधार पर, राज्य के आधार पर, जिस धर्म में जन्म हुआ उसके आधार पर, नास्तिक-आस्तिक के आधार पर, वर्ग के आधार पर, जाति के आधार पर समूहों में बांटने के लिए कहा। और फिर अपने सेक्स के आधार पर और सबसे अन्त में अपनी वैवाहिक स्थिति के आधार पर शादीशुदा, तलाकशुदा- समुहों में बांटने की प्रक्रिया चली।

इन सब आधारों पर कुछ समूह बार-बार बनाए गए, इसके दौरान उन आधारों पर चर्चा चली और यह निकल कर सामने आया कि कैसे व्यक्ति एक ही समय में कितनी सारी पहचानों के साथ जीता है और इन अलग-अलग पहचानों के आधार पर कभी कुछ लोगों के साथ एक समुदाय बनाते हैं और अन्यों से अलग हो जाते हैं। और जैसे ही हम अपनी किसी दूसरी पहचान को आगे लाते हैं तो हमारे समुदाय के वो लोग जो किसी और पहचान में हमारे साथ थे वो हमारे विपरीत चले जाते हैं। इन विभिन्न आधारों पर जब सहभागी बंटे तो हर उस आधार पर चर्चा हुई कि उस सामाजिक पहचान में हम क्यों हैं और उसके क्या फायदें व नुकसान हैं।

परिचय के बाद उन्होंने सभी को अपने देश के आधार पर समूहों में बंटने के लिए कहा, फिर जिस राज्य में काम करते हैं उसके आधार पर समूह बनाए। इसके बाद उन्होंने सबको धर्म में भी अन्य तरह के समुह बनाने को कहा जैसे-जो जिस धर्म में पैदा हुए हैं, पर उसे नहीं मानते। किसी अन्य धर्म को मानते हैं तथा जो नास्तिक हैं। इसके साथ ही धर्म पर चर्चा शुरू हुई कि क्यों लोगों ने जन्म वाले धर्म को छोड़ा या क्यों कुछ लोग नास्तिक हैं। इसमें सहभागियों द्वारा जो बातें मुख्यतः निकलकर आइ वह इस प्रकार थीं-

» एक शक्ति है जो हमें चलाती है - जो धर्म से मिलती है। यह शत्ति हमें उसी धर्म से मिलती है जिसमें हम पैदा हुए हैं। धर्म से ही समाज व दिमाग बढ़ता है।

» प्रकृति हमारा भगवान है।

» पहले कई व्रत रखती थी, अब पूजा-पाठ सब छोड़ दिया।

» भगवान एक शक्ति है पर हिन्दु, इसाई, सिक्ख, मुस्लिम बनकर मानों ये ज़रूरी नहीं है।

» त्यौहार सब करती हूँ। ईद पर खाना, होली खेलती हूँ क्योंकि रंग पसंद है, पटाखों से डर लगता है इसलिए दिवाली पर घर में रहती हूँ। सभी धर्मों में आस्था है।

» मानवीय धर्म ही सबसे बड़ा ध्र्म है।

क्योंकि ज़िन्दगी से प्यार है
हमें हिंसा से इंकार है।

कमला भसीन- गाना अब तो मजहब कोई ऐसा भी बनाया जाय- जिसमें हर इंसान को इंसा बनाया जाय...। के साथ यह कहते हुए कि बहुत अच्छा है कि यहां पर ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपना ऐसा मानव धर्म बना लिया है आगे बढ़ती है।

सभी को अपने वर्ग के आधार पर समूह बनाने को कहा- तीन समूह बने, ज़्यादातर मध्यम वर्ग, दो लोगों ने उच्च-मध्यम वर्ग का समूह बनाया और दो सहभागियों ने एक समूह बनाया-वर्ग रहित, पर उन दोनों सहभागियों से चर्चा करके यह कहा गया कि उनकी वेशभूषा से यह मध्यम वर्ग के लगते हैं और उनको वहां शामिल कर लिया गया। इस विभाजन के साथ ये बात निकलकर आई कि ज़्यादातर सभी गैर-सरकारी संगठन-गरीब व मज़दूर वर्ग के बीच काम करते हैं, पर उस वर्ग से कोई भी इस कोर्स के लिए नहीं आया। इस पर कमला भसीन ने सवाल खड़ा किया यानि हम जिस वर्ग के बीच काम करते हैं उनके लिए हमारी सहानुभूति है पर संस्था में वह उस स्थिति में नहीं पहुँच सके कि उन्हें बाहर ट्रेनिंग पर भेजा जाए, क्योंकि वह उतने पढ़े-लिखे नहीं हैं। उनकी अपनी संस्थाएं कब बनेगी, जिसे वह खुद चलाएंगे?

इस सवाल के साथ आगे बढ़ते हुए सभी को अपनी जाति के आधार पर समूह बनाने के लिए कहा। एक बार फिर जो किन्हीं अन्य पहचानों में एक साथ थे वे अलग हो गए और जो लोग अलग-अलग पहचान के थे वे जाति की पहचान में एक साथ आ गए। चर्चा के दौरान कुछ लोगों ने कहा कि वह जाति को नहीं मानते। और सवाल उभर कर सामने आया कि क्या यह कह देने भर से या कुछ लोगों के जाति तोड़ने से जाति व्यवस्था टूट सकती है?

कमला भसीन ने इस पर टिप्पणी की कि हम लोग कोई जाति नहीं कहते हैं क्योंकि हम उच्च जाति के है पर इस व्यवस्था में दलितों के हाथ कटे हैं। इस जाति व्यवस्था में उनका उत्पीड़न होता है। जैसी राजनीति हमारे देश में यहाँ तक कि नेपाल में भी सामने नजर आती है उससे यह साफ होता है कि अभी यहां जाति व्यवस्था का टूटना जल्दी ही संभव नहीं है। इसके साथ ही सत्र को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने सभी सहभागियों को अपने सेक्स के आधार पर बंटने के लिए कहा। जब वहां उपस्थित सभी सहभागी दो समूहों में बंटे तो एक प्रश्न खड़ा हुआ कि ऐसा क्यों है कि इस ट्रेनिंग में महिलाएँ ज्यादा हैं? चर्चा से निकल कर आया कि किस तरह जेण्डर या महिला मुद्दों पर चर्चा व समझ विकसित करने या इन मुद्दों पर काम करने का मुख्य जिम्मा तो महिलाओं का समझा ही जाता है पर साथ ही समाज में उन पुरुषों का मजाक भी बनाया जाता है जो इस तरह के प्रशिक्षण के लिए आते हैं। पहले महिला आन्दोलन की तरफ से भी पुरुषों को जेण्डर कार्यशालाओं में नहीं बुलाया जाता था। अब इस समझ में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है। अब पुरुषों को भी जेण्डर प्रशिक्षण के लिए बुलाया जाता है और पुरुषों द्वारा भी इस प्रशिक्षण में कुछ हद तक भागीदारी शुरू हुई है।

मुख्यतः धर्म व वैवाहिक स्थिति के आधार पर समूहों के विभाजन के समय हुई चर्चा काफी विस्तार से हुई। वैवाहिक स्थिति के आधर पर जब समूह बने तो शादीशुदा वाले समूह में पुरुष भी थे और महिलाएं भी, किन्तु दोनों की एक ही पहचान होने के बावजूद कुछ अन्तर थेः इस पर चर्चा हुई। महिलाएं जो शादीशुदा थीं, उनमें से कईयों ने बिछिया, मंगलसूत्र आदि पहने थे जो गैरशादीशुदा या तलाकशुदा महिलाओं ने नहीं पहने थे जबकि पुरुषों के पास ऐसा कोई चिन्ह नहीं था जिससे शादीशुदा या गैरशादीशुदा होने का अन्तर किया जा सके। चर्चा से निकल कर आया कि औरतों के लिए कि वो किसी की पत्नी है या मिलकियत है यह चिन्हित करने के अलग-अलग तरीके हैं किन्तु पुरुष के लिए ऐसे कोई चिन्ह नहीं हैं। क्योंकि वह इन सब पर नियंत्रण रखता है। चिन्ह सम्पति पर ज़रूरी होते हैं, मालिक पर नहीं।

इस चर्चा के दौरान कमला जी ने 'पति' शब्द के अर्थ पर बात रखी। पुरुष जिससे शादी होती है उसे पति, शौहर, मालिक, स्वामी कहा जाता है, इन शब्दों का अर्थ नियंत्रण करने वाला होता है। वह व्यक्ति जिसकी कोई सम्पति होती है जिस पर उसका नियंत्रण होता है। यह सब शब्द असमानता के सूचक हैं। इससे प्रदर्शित होता है कि महिला पर पति का अधिकार है। भाषा में तो यह शब्द गैरबराबरी का प्रदर्शन करते ही हैं रिश्ते में भी बराबरी नहीं है। शादी की संस्था

की परिभाषा में ही गैरबराबरी है। शादी के वक्त पिता द्वारा अपनी बेटी का 'कन्यादान' एक अन्य पुरुष को किया जाता है। यह दो पुरुषों के बीच का सौदा है, एक देता है, दूसरा लेता है। औरत गठरी की तरह इधर से उधर चली जाती है। उसके साथ ही कमला जी ने कहा कि हमें शादी की परिभाषा पर सवाल खड़ा करने की ज़रूरत है। जब हमारे संविधान में स्त्री-पुरुष बराबर है तो पति शब्द कहता है पुरुष स्वामी / मालिक है, यह गैरबराबरी का शब्द है अतः यह असंवैधानिक है। अतः इसकी नई परिभाषा की ज़रूरत है, नए शब्द व नए रिश्ते बनाने की ज़रूरत है। हमें पति व स्वामी नहीं साथी की ज़रूरत है। इसके साथ ही कमला जी ने परिवार कैसा हो व पति कैसा हो पर अपना ही लिखा एक गीत सभी सहभागियों के साथ मिलकर गाया- जो प्यार से भरा है वही तो परिवार है...

गाने के बाद कमला जी ने सभी सहभागियों के साथ जेण्डर की परिभाषा व सेक्स-जेण्डर के अन्तर के मुख्य बिन्दुओं तक पहुंचने के लिए कुछ उदाहरणों से चर्चा शुरू की-

(कमला) उदाहरण (१) - अगर आपके सामने एक नवजात शिशु को उसके जननांग ढक कर लाएं तो क्या आप पहचान लेंगे कि वह लड़की है या लड़का?

सहभागी - नहीं

कमला - क्यों?

सहभागी - क्योंकि शिशु में जननांगों से ही पता चलता है कि वो लड़का है या लड़की। १०-११ साल तक अन्य कुछ अन्तर नहीं होता उनमें।

कमला - उसके बाद उनमें किस तरह के शारीरिक अन्तर आते हैं?

सहभागी - उनके हारमोन परिवर्तित होते हैं। लड़कियों के स्तनों का विकास होता है। माहवारी चालू हो जाती है। लड़कों की आवाज़ में परिवर्तन आ जाता है- आवाज़ थोड़ी मोटी हो जाती है। गुप्तांगों पर बाल आते हैं।

कमला - अतः स्त्री-पुरुष में प्रकृति ने कुछ अन्तर बनाए हैं, दोनों को कुछ अलग-अलग बनाया गया है। यह फ़र्क क्यों बनाया है प्रकृति ने? स्त्रियों के स्तन क्यों बने हैं-सौंदर्य प्रतियोगिताओं के लिए या फिर प्रजनन के लिए?

सहभागी - बच्चों को स्तनपान करवाने के लिए।

कमला - अतः प्रकृति ने सिर्फ़ प्रजनन के लिए दोनों में फ़र्क बनाए हैं। मोटरसाइकिल चलाने, पेड़ पर चढ़ने, बच्चे को दुलारने, खाना पकाने जैसे अन्तर स्त्री-पुरुष के अन्दर प्रकृति ने नहीं बनाए। पूरे संसार में केवल स्त्री है जो बच्चा पैदा कर सकती है व उसे स्तन से दूध पिला सकती है और केवल पुरुष/नर ही है जो बच्चे के निर्माण के लिए शुक्राणु दे सकता है। स्त्री-पुरुष का यह अन्तर एक दूसरे के साथ मिलकर मनुष्य जाति का जैवकीय पुनरुत्पादन करता है। अतः प्रकृति द्वारा स्त्री पुरुष का अन्तर मात्रा प्रजनन के लिए है।

उदाहरण (२) एक सात साल के बच्चे के जन्मदिन पर बहुत सारे बच्चे तैयार हो कर आए हैं। क्या आप उनको पहचान सकते हैं कि कौन लड़का है, कौन लड़की?

सहभागी - हां।

कमला - कैसे किन-किन आधारों पर पहचान सकते हैं?

सहभागी - कपड़े, आभूषण, सौन्दर्य प्रसाधन, जूते, उनके हावभाव/Attitude/ Behaviour, नाम, व्यवहार, कौन से खेल खेलते हैं, उनके खिलौनों इत्यादि से।

कमला - लड़कियों के कपड़े ज़्यादा रंग-बिरंगे होंगे, ज़्यादा तंग या फिर ज़्यादा ही ढीले होंगे जो उन्हें कुछ भी करने में बाध देंगे। ज़्यादातर कपड़ों में जेब नहीं होती तो उनका सामान उनके हाथों में होता है। जूते या तो ऊँची ऐड़ी वाले या फिर एकदम खुले चप्पल जिसमें जल्दी-जल्दी दौड़ना-भागना संभव ही नहीं है। दूसरी तरफ लड़कों के कपड़े एकदम चुस्त-दुरुस्त। ज़्यादातर कपड़ों में जेब जिससे उनके हाथ हमेशा खाली कुछ भी करने के लिए। जूते भी चुस्त-दुरुस्त पैरों में ठीक से कसे हुए जिससे भाग दौड़ में कोई बाधा न हो।

कपड़े, जूते, आभूषण आदि पहनावा स्फूर्ति से जुड़ा है। महिलाओं के पहनावे ऐसे हैं जो उनको उलझाते हैं जिससे उनकी Efficiency में बाध आती है। पुरुषों के पहनावे ऐसे हैं जो उनको सुलझाते हैं, जिससे उनकी Efficiency गतिविधि में स्वतंत्रता आती है। प्रकृति ने यह सब नहीं दिया। यह सब समाज ने बनाया। अतः समाज द्वारा दी गई स्त्री-पुरुष/लड़का-लड़की की परिभाषा है-जेण्डर। इसमें प्रकृति की कोई भूमिका नहीं है। समाज तय करेगा कपड़े, गहने, जूते, खिलौने कैसे हो। यह सब महिला को उलझाने वाले हैं। महिला की कीमत सिर्फ़ उसके शरीर से है और उसका लेना-देना 'दिखने' से है। और वहीं दूसरी ओर पुरुषों का लेना-देना कुछ करने से है। वह आगे बढ़ें Efficiant हो ऐसे पहनावे हो उनके। जेण्डर से तय होता है कि हमारे अधिकार, कर्त्तव्य, सपने आदि क्या होंगे, हम क्या बनेंगे? इस चर्चा के साथ कमला जी ने जेण्डर की परिभाषा बताई-

जेण्डर का मतलब है- स्त्री-पुरुष दोनों को समाज द्वारा दी गई परिभाषा। यानि समाज स्त्री व पुरुष को किस तरह देखता है, उन्हें कैसी भूमिकाएं, अधिकार, संसाधन देता है, उन्हें किस तरह का व्यवहार व मानसिकता सिखाता है। जेण्डर एक सामाजिक प्रक्रिया है। जेण्डर की बराबरी वाली और गैरबराबरी वाली दोनों तरह की परिभाषाएं हो सकती हैं। जेण्डर एक न्यूट्रल शब्द है। तभी हम जेण्डर समानता की भी बात करते हैं। अतः सेक्स व जेण्डर एक चीज नहीं है और इनके बीच रिश्ता बिल्कुल भी प्राकृतिक नहीं है। इसके साथ ही कमला भसीन ने बोर्ड पर सेक्स और जेण्डर के मुख्य अंतरों को लिख कर भी स्पष्ट किया-

सेक्स	जेण्डर
जैविक परिभाषा	सामाजिक परिभाषा
प्रकृति की देन है	सामाजिक व सांस्कृतिक है तथा मनुष्य ने बनाया है।
सार्वभौमिक है, स्थाई है, अपरिवर्तनशील है	अलग-अलग समाजों में भिन्न-भिन्न है। परिवर्तनशील है।
इसे बदला नहीं जा सकता	बदला जा सकता है।

कमला– जेण्डर की अवधरणा आने पर यह भी सवाल आया कि जेण्डर को हिन्दी में क्या कहेंगे? क्योंकि अंग्रेज़ी में तो दो अलग-अलग शब्द हैं सेक्स व जेण्डर, किन्तु हिन्दी में केवल एक शब्द है लिंग जिसे सेक्स व जेण्डर दोनों के लिए इस्तेमाल करते हैं। तब दो शब्द लाए गए– सेक्स के लिए ‘‘प्राकृतिक लिंग’’ जिसे छोटे रूप में प्रालिंग कहते हैं और जेण्डर के लिए ‘‘सामाजिक लिंग’’ जिसे छोटे रूप में सालिंग कहते हैं।

कमला प्रश्न– जेण्डर की अवधरणा लाना क्यों ज़रूरी था? इसके आने से क्या ऐसा खास हुआ कि यह इतनी प्रचलित है? इस प्रश्न पर सहभागियों ने बहुत से उत्तर दिए और उन सब उत्तरों को समग्रता में पिरोकर कमला भसीन ने इस प्रकार रखा– ‘जेण्डर शब्द ने प्रकृति व समाज की स्त्री पुरुष की समझ को अलग-अलग करके देखने का नज़रिया दिया। अतः इसका प्रयोग स्त्री-पुरुष की सामाजिक सच्चाई को समझने व विश्लेषण के एक हथियार के तौर पर किया जाता है। सदियों से यह समझा जाता रहा कि स्त्री-पुरुष की चारित्रिक विशेषताएं, उनकी भूमिकाएं और समाज से मिलने वाला अलग दर्जा आदि सब उनके शरीर यानि कि लिंग/सेक्स द्वारा निर्धरित होता है। अतः समाज स्त्री-पुरुष के इस अप्राकृतिक, सामाजिक भेदभाव, शोषण, उत्पीड़न को प्राकृतिक बताता रहा और इस स्थिति को बदलने की ज़िम्मेदारी भी प्रकृति पर थोपता रहा। इस भेद व उत्पीड़न को मिटाने की सामाजिक जिम्मेदारी नहीं ली। समाज ने जाति, धर्म, नस्ल, स्त्री-पुरुष अंतर को प्राकृतिक बताकर उसके द्वारा होने वाले शोषण व उत्पीड़न को भी प्राकृतिक कर दिया। प्रकृति को लेकर समाज हमेशा भ्रम पैदा करता है क्यों कुछ काम महिलाएं नहीं कर सकती व कुछ काम पुरुष नहीं कर सकते। पहले हमारे पास इस अन्तर को समझने की भाषा नहीं थी। पर अब जेण्डर की अवधारणा ने प्राकृतिक व सामाजिक के अन्तर की समझ को स्पष्ट कर दिया। अब हम जेण्डर समानता की बात कर सकते हैं। नारीवादियों को प्रकृति से कोई शिकायत नहीं है, हमारी शिकायत केवल समाज से है जब वह हमें दबाता उत्पीड़ित करता व शोषित करता है। जेण्डर की अवधारणा पर चर्चा के बाद सभी को ‘बोल’ फिल्म के लिए आमंत्रित किया गया।

25 अप्रैल सुबह का सत्र

भूमण्डलीकरण के दौर में पितृसत्ता के बदलते स्वरूप

कमला भसीन

दूसरे दिन के पहले सत्र की शुरुआत पिछली रात की फ़िल्म बोल के गाने से हुई। गाना–दिल परेशां है रात भारी है, ज़िन्दगी है कि फिर भी प्यारी है। कमला भसीन ने भी सहभागियों के साथ मिलकर ज़िन्दगी अपनी सजाएंगे गीत गाया। गीतों के इस महौल के बाद कमला भसीन ने सहभागियों को पहले दिन के अनुभवों, अनुभूतियों को सबके साथ साझा करने के लिए कहा। चर्चा से सामने आया कि पहले दिन की चर्चाओं से सहभागियों के मन में नए सवाल उभरे और समाज व खुद को देखने के नजरिए में भी अन्तर आया। उन्हें अच्छा लगा कि उनकी समझ और साफ़ हुई अपनी पहचानों को लेकर। कैसे प्रत्येक व्यक्ति बहु–पहचानों में जीता है।

कमला जी ने स्पष्ट किया कि जो उन्होंने पिछले सत्र में करवाया उसे सोशयोग्रामिंग कहते हैं। बार–बार समाज में व्यक्तियों को सोश्योग्राम बनाया जाता है। हम सबकी बहु–पहचानें होती है। जब यह कहा जाता है कि किसी की पहचान एक औरत के तौर पर है तो यह जरूरी नहीं कि वह हमेशा शक्तिविहीन हो और दबी हुई हो। एक औरत होने के साथ–साथ हिन्दु या मुसलमान, मध्यमवर्गीय या निम्नवर्गीय, उच्च या निम्न जातीय, विवाहित या अविवाहित आदि हो सकती है। अतः जेण्डर का अन्य पहचानों के साथ संबंध होता है वह एक दूसरे पर प्रभाव डालती है। समाज में सभी औरतें सभी पुरुषों के अधीन नहीं होती है। औरत होने के अलावा उसकी अन्य पहचान/पहचानें क्या हैं इससे तय होता है कि समाज में उसकी स्थिति क्या है? औरत जहां घर में पुरुष के अधीन होगी वहीं घर के बाहर उसकी जाति उसका वर्ग आदि तय करेंगे कि वह कमज़ोर है या मज़बूत स्थिति में है। अतः समाज में सोश्योग्रामिंग के जरिए व्यक्ति बहु–पहचानों के संजाल में फंसा रहता है। इन सब सामाजिक पहचानों को प्राकृतिक बनाना समाज की एक चतुर चाल है जिसके जरिए सत्तावान वर्ग सत्ताहीन वर्ग का शोषण व उत्पीड़न करता है।

सोशयोग्रामिंग के ढांचागत व्यवस्था से संबंध पर चर्चा के लिए कमला भसीन ने एक प्रश्न सभी सहभागियों के सामने रखा– अगर हमें इस समस्या को खत्म करना है तो हमें एक–एक महिला

से जाकर बात करनी या काम करना चाहिए या ढांचागत समस्या यानिकि समस्या की जड़ की समझ विकसित करके तब लड़ाई की रणनीति बनानी चाहिए? हम पुरुष के खिलाफ़ नहीं पुरुषात्मक ढांचे के खिलाफ़ हैं। औरतें खुद भी इसमें फंसी है। उन्हें खुद भी इससे निकलने की ज़रूरत है। इस ढांचे के प्राकृतिकरण में धर्म, जातिवाद, आदि भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः इसके अन्तर्सम्बन्ध को भी समझने की ज़रूरत है।

सभी सहभागियों को चार समूहों में बांट दिया गया। पुरुष सहभागियों का एक समूह व अन्य तीन समूह महिला सहभागियों के। सभी को निम्नलिखित तीन सवालों पर चर्चा करने के लिए कहा गया।

१. आपके परिवारों में जब से आप पैदा हुए जेण्डर किस प्रकार का था?

२. आपके माता-पिता के संबंध/रिश्ते कैसे थे?

३. आपको कैसे जेण्डर की ट्रेनिंग दी गई?

चर्चा से निकले मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं-

» घर के महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में पुरुषों पिता आदिद्ध का हक। जबकि घर के कामकाज को करने की जिम्मेदारी घर की औरतों की माँ-बहन आदि;

» महिलाओं की घर की सम्पत्ति तक पहुँच तो है, लेकिन उस पर अधिकार व नियंत्रण नहीं। अधिकार व नियंत्रण पुरुषों का।

» लड़कियों/महिलाओं के खानपान, घुमने-फिरने, घर से बाहर जाने, वस्त्रों, खेलने आदि पर रोक-टोक। जबकि लड़कों के लिए ऐसा नहीं। लड़के अकेले बाहर जा सकते हैं, खेलने की छूट, देर रात तक घर से बाहर रहने की छूट, खाने में उन्हें प्राथमिकता, लड़कों की मांग जल्दी स्वीकार होती है।

» पुरुष लड़के अपनी मर्जी व शौक से भी घर का काम करना चाहे तो उन्हें नहीं करने दिया जाता। यहां तक कि घर की महिलाएं भी ऐसा नहीं करने देती, क्योंकि वह भी इस पित्तृसत्तात्मक सोच के साथ जुड़ी है।

» पुरुषों का कमा कर लाना ज़रूरी है, जबकि महिलाओं की कमाई को समान दर्जा नहीं दिया जाता। यहां तक कि महिलाओं का अपनी कमाई पर भी हक नहीं होता। माता-पिता लड़की की कमाई नहीं ले सकते।

» पुरुष/महिला कैसा व्यवहार करेंगे यह बचपन से ही सिखाया जाता है। लड़कियां धीमे से बोले / हंसें, शर्माएं, नीचे देखकर चले, सलीके से बैठे, कम खाएं, कहना मानें। जबकि लड़के बाहर के काम करें, रोएं नहीं, शर्माएं नहीं, नीचे देखकर नहीं सामने देखकर चलें आदि सिखाया जाता है, इस तरह व्यक्ति के बोलने, खेलने, सोचने, चलने आदि सभी

पर निमंत्रण रखा जाता है।

» तमाम चर्चा के आधार पर कमला भसीन ने स्पष्ट किया कि यहां पर उपस्थिति सभी लोग मध्यवर्ग के परिवारों से है और यह साफ होता है कि परिवारों द्वारा महिलाओं की हर प्रकार की आजादी, भोजन, शिक्षा, निर्णय, सम्पति आदि पर रोकटोक है। इससे निकल कर आया परिवारों में ही सबसे ज्यादा अन्याय, असमानता व अप्रजातंत्र व्याप्त है जरूरत पड़ने पर परिवार हिंसात्मक भी हो जाते हैं।

कमला भसीन का कहना है कि यहां यह समझने की ज़रूरत है कि समस्या जेण्डर नहीं पितृसत्ता है। समाज में पितृसत्ता है इसलिए जेण्डर ऐसा है। जेण्डर शब्द न्यूट्रल है न वह असमान है न समान। अगर हम असमानता की बात करते हैं तब हम जेण्डर असमानता कहते हैं और अगर हम समानता की बात करते हैं तो जेण्डर समानता कहते हैं। जेण्डर की असमान स्थिति को समझने के लिए ढांचे को/ढांचागत व्यवस्था को समझने की ज़रूरत है। यहां जड़ पितृसत्ता है, जेण्डर की उत्पत्ति उसका फल है। अतः हमें पित्तृसत्ता की अवधारणा को समझना होगा। पित्तृसत्ता को एक व्यवस्था के रूप में समझना ज़रूरी है। पित्तृसत्ता की अवधरणा में तीन बातें महत्त्वूपर्ण है-

☞ यह एक समाज व्यवस्था है।

☞ इसमें पुरुषों को उत्तम माना जाता है और मान्यता है कि महिलाएं निम्न हैं।

☞ संसाधनों, निर्णयों व विचारधारा पर पुरुषों का अध्कि नियंत्रण होता है।

पित्तृसत्ता शब्द पुराना है। इसका शाब्दिक अर्थ है पिता या 'कुलपति' की सत्ता या शासन। पहले इसका इस्तेमाल एक खास प्रकार के ''पुरुष प्रधन परिवारों'' के लिए किया जाता था, लेकिन आजकल इस शब्द का इस्तेमाल पुरुष सत्ता दर्शाने के लिए किया जाता है। क्योंकि केवल परिवार में ही पित्तृसत्ता नहीं है वह समाज के अन्य हिस्सों में भी कई तरीकों से औरतों को निचले दर्जे पर रखती है। पित्तृसत्ता की अवधरणा के दो हिस्से है- (१) ढांचा (२) विचारधरा।

ढांचा- एक ठोस चीज है जो दिखाई देती है। विचारधरा-जो इस ढांचे व अवधरणा को लोगों के मानस में स्वीकार्य बनाती है। एक बार औरतों के दिमाग में पित्तृसत्ता के विचारों को बैठा दो तो बाहर से चौकीदारी की जरूरत नहीं है। पित्तृसत्ता की विचारधरा को धर्मो, मीडिया, परिवार, शिक्षा आदि द्वारा स्त्री-पुरुष के दिमाग/विचारों में बैठा दिया गया है। अतः विचारधारा व ढांचा दोनों मिलकर पित्तृसत्ता बनती है। पित्तृसत्तात्मक विचारधरा लोगों के मानस को तैयार करती और ढांचा उसे आगे ले जाता है। कई बार ढांचा तो बदल जाता

है पर विचारधरा वहीं रहती है। पित्तृसत्ता का स्वरूप सदैव एक जैसा नहीं रहता। इतिहास के अलग-अलग कालों में विभिन्न समाजों या उसी समाज के विभिन्न वर्गों में इसका स्वरूप भिन्न-भिन्न हो सकता है और होता भी है। हालांकि मुख्य विशेषताएं वही रहती है। पुरुषों का नियंत्रण तो रहता है पर नियंत्रण का तरीका अलग हो सकता है।

पित्तृसत्ता एक गहरी व्यवस्था है। इसमें स्त्री-पुरुष दोनों पित्तृसत्तात्मक होते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि पित्तृसत्ता में औरतों के पास कोई ताकत, अधिकार, संसाधन नहीं होते। कोई भी असमान व्यवस्था बगैर कुछ दमित लोगों की सहभागिता के नहीं चल सकती, और वह ऐसे लोग होते हैं जिन्हें इस व्यवस्था से फायदे मिलते हैं। यह पित्तृसत्ता में भी होता है, औरतों को भी कुछ पद, अधिकार, संसाधन, ताकतें दी जाती हैं, किन्तु इससे यह वास्तविकता नहीं बदलती कि वह व्यवस्था पुरुष प्रभुत्व की है। पित्तृसत्तात्मक सोच औरतों की सोच बन चुकी है, पित्तृसत्ता में रिश्तों, संबंधों का एक ऐसा उलझा जाल है जिसके अन्दर वे सक्रिय सहयोग देती रहती हैं। यह सहयोग कई तरीकों से हासिल किया जाता है जिसमें पित्तृसत्ता के नियमों को मानने वाली औरतों को सम्मानित करना व पित्तृसत्ता के फायदे देना शामिल है। सती के मंदिर बनाकर ऐसी औरतों की पूजा की जाती है जो पित्तृसत्ता की रक्षा के लिए अपनी जान देती है। वास्तव में वे पित्तृसत्ता के मंदिर हैं। पित्तृसत्ता की अवधारणा को स्पष्ट करने के बाद कमला भसीन ने स्पष्ट किया कि कैसे और किन-किन क्षेत्रों में पित्तृसत्ता औरतों की ज़िन्दगी व क्षमताओं को नियंत्रित करती है-

☞ औरतों की श्रम शक्ति व उत्पादन पर - औरत द्वारा घर के अन्दर के श्रम वह बाहर जाकर करने वाले उत्पादन व श्रम पर पुरुषों का नियंत्रण रहता है। घरेलू श्रम का मूल्य नहीं माना जाता व बाहर औरतों को अच्छे मूल्य वाली, ऊँचे पदों की नौकरियों से दूर रखा जाता है। तथा उनके श्रम का मुआवजा भी कम मिलता है। उत्पादन व श्रम शक्ति में औरतों को न दाम, न मान व निर्णय की शक्ति है।

☞ औरतों की प्रजनन शक्ति- शरीर औरतों का है, पर उनकी अपनी प्रजनन शक्ति पर उनका नियंत्रण नहीं है। बच्चों की संख्या उनके जन्म का समय, गर्भनिरोधकों का इस्तेमाल जैसे औरतों से ताल्लुक रखने वाली बुनियादी मुद्दों का फैसला भी खुद उनके हाथ में नहीं है। उस पर भी पुरुष प्रधन समाज का नियंत्रण है। व्यक्तिगत रूप से तो पुरुष अपने परिवार की औरत को काबू रखते ही हैं धार्मिक संस्थान व राजनीति के द्वारा भी औरतों की प्रजनन शक्ति से जुड़े कायदे-कानून बनाए जाते हैं। उदाहरण के लिए - एक ओर जहां गर्भ में ही साढ़े तीन करोड़ से ज़्यादा औरतों को मार दिया गया वहीं दूसरी ओर ये कानून बनाए गए कि जिन महिलाओं के दो से ज़्यादा बच्चे हुए वह सरपंच नहीं बन सकतीं।

☞ यौनिकता- औरत के निम्न स्तर का यह एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिस पर पुरुषों का नियंत्रण है। जल्दी शादी करके, कैसे कपड़े पहनने हैं यह तय करके आदि औरत की यौनिकता पर नियंत्रण बनाया जाता है। इसके लिए नैतिक व कानूनी हदें बनाई जाती हैं। सुशील व वेश्या जैसे विभाजन किए जाते हैं। बलात्कार या उसकी धमकी के जरिए

> भी औरतों की यौनिकता को काबू किया जाता है। इसके साथ ही इज्जत व शर्मिन्दगी जैसे मायाजाल भी तैयार किए जाते हैं समाज द्वारा औरतों की यौनिकता को नियंत्रित करने के लिए। औरतों की यौनिकता, प्रजनन व उत्पादन पर नियंत्रण के लिए जरूरी है कि औरतों की गतिशीलता पर नियंत्राण किया जाए। इसके भी कई तरीके अपनाए जाते हैं- शिक्षा, अवसरों व अनुभवों को नियंत्रित किया जाता है।

पित्तृसत्ता के अन्दर औरतों की जिन्दगी के विभिन्न पक्षों/क्षेत्रों पर पुरुषों के नियंत्रण को कमला जी ने बहुत ही स्पष्ट तरीके से समझाया। इसके साथ ही उन्होंने यह भी चर्चा की कि कैसे पित्तृसत्ता में जहां एक ओर विभिन्न संसाध्नों जैसे सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, सांस्कृतिक पर पुरुषों का नियंत्रण है, वहीं दूसरी ओर परिवार, धर्म, शिक्षा, न्याय, आर्थिक संस्थाएं, राजनैतिक संस्थाएं, राज्य, मीडिया और एनजीओ आदि द्वारा पित्तृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्दर औरतों को नियंत्रित किया जाता है और इन सब संस्थाओं पर भी पुरुषों का नियंत्रण है।

उपरोक्त चर्चा के उपरान्त कमला भसीन ने कहा कि पित्तृसत्ता एक व्यवस्था है तो क्या यह सदा से ऐसी ही रही है? अगर नहीं तो ये आई कहां से और क्यों आई? और यहां उन्होंने एंगल्स की पुस्तक ''ओरिजन ऑफ़ द फैमिली, प्राइवेट प्रॉपर्टी एण्ड द स्टेट'' की चर्चा की और पित्तृसत्ता के उद्गम के इतिहास पर रोशनी डाली।

एंगल्स का विश्वास था कि औरतों की अधीनता की शुरुआत निजी सम्पत्ति की शुरुआत के साथ हुई, तभी विश्व इतिहास में औरतों की हार हुई। एंगल्स दुनिया के इतिहास को तीन हिस्सों में बांटते हैं-

(१) पाशिवकता

(२) बर्बरता व

(३) सभ्यता।

पाश्विकता काल में मनुष्य लगभग जानवरों की तरह था। वंश माँ से जाना जाता था, उस समय न विवाह था न निजी सम्पति की धारणा। बर्बर काल में भी शिकार व भोजन इकट्ठा करना जारी रहा। धीरे-धीरे पशुपालन व कुछ कृषि की शुरुआत हुई। पुरुष शिकार के लिए दूर-दूर जाते थे, जबकि औरतें पीछे रहकर घर और बच्चे संभालती थीं। समय के साथ लिंग आधारित काम का बंटवारा हुआ परन्तु तब भी औरतों के हाथ में ताकत थी, मातृकुल के कबीले पर उनका नियंत्रण था। एक कबीले के भीतर कोई वर्गविभाजन नहीं था, लेकिन एक कबीले का दूसरे से झगड़ा होता था।

जब पशुओं को पालतु बनाया जाने लगा तक पुरुषों को गर्भ का रहस्य समझ में आया। शिकार तथा कबीलों के आपसी युद्धों के लिए बड़े हथियार बनने लगे। औरतों ने खेती व घर के काम के लिए औजार बनाए और पुरुषों ने युद्धों व शिकार के लिए हथियार बनाए। इन लड़ाइयों में पकड़े गए लोग दास बने। कबीलों में अधिक से अधिक पशु और दास इकट्ठे करने शुरू कर दिए गए। खासतौर पर दासियां। इस तरह से लिंगों के बीच और अधिक विभाजन हुआ। पुरुषों ने पशुओं और दासों के रूप में सम्पति इकट्ठी करनी शुरू कर दी, चूंकि यह सम्पति लड़ाइयों

से मिलती थी स्वभाविक रूप से पुरुष उस सम्पति के स्वामी बन गए। इस सबके द्वारा नीजी सम्पति की धरणा जन्मी। पुरुष चाहते थे कि उनके द्वारा इकट्ठी की गई शक्ति व सम्पति केवल उनके बच्चों को मिले। बच्चे एक खास पुरुष के ही है यह सुनिश्चित करने के लिए ज़रूरी था कि औरत सिर्फ़ एक पुरुष से शारीरिक संबंध रखें। उत्तराधिकार की सुनिश्चितता के लिए मातृ अधिकार को खत्म कर दिया गया। इसके लिए औरत को घरेलू बनाना, उसकी यौनिकता पर नियंत्रण ज़रूरी था।

एंगल्स के अनुसार इतिहास के इस दौर में और इन कारणों से औरतों पर पित्तृसत्ता व एक विवाही Monogamous संबंध लादे गए। चूंकि अब सम्पति उन्हीं क्षेत्रों में बनाई जा रही थी जो पुरुषों के नियंत्रण में थे इसलिए औरतें आर्थिक रूप से पुरुष पर निर्भर हो गई। एंगल्स के अनुसार आधुनिक सभ्यता में औरतों को घर की चारदीवारी में बन्द कर दिया गया, ताकि वे सम्पति पाने वाले उत्तराधिकारी पैदा करें और उसमें कोई मिलावट न हो। यहीं विवाह में दोहरे मापदण्ड का समय भी है। कमला भसीन का कहना है कि माँ का अधिकार व पहचान प्राकृतिक है और बाद की पिता की पहचान सामाजिक है। जब तक औरत इस डिब्बे में बन्द रहेगी तब तक उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

ऐतिहासिक शुरूआत के समय के तौर पर वह इसे ३५०० बी.सी. पूर्व के लगभग शुरू हुआ मानती है। और उनका यह भी कहना है कि १५०० बी.सी. पूर्व तक कुछ जगहों पर पित्तृसत्ता अच्छी तरह से आ गई थी। भारत व उत्तरपूर्वी एशिया में सभ्यता का विकास पहले हुआ। अतः कमला जी का कहना है कि वहां पित्तृसत्ता पहले आई। इस प्रकार पित्तृसत्ता की काल अवधि को अभी तक अन्दाजन २००० से ४००० साल पुरानी कहा जा सकता है। निजी सम्पति व हथियारों पर पुरुषों का नियंत्रण था। इसे और अधिक नियंत्रित करने के लिए राज्यसत्ता, धर्म आदि का विकास किया गया। फिर जितने राज्य आए वह पित्तृसत्तात्मक थे। पहले जो नियंत्रण हिंसा व जोर जबरदस्ती द्वारा किया जाता था फिर वह धीरे-धीरे धर्म, शिक्षा, राज्य, समाज जैसी संस्थाओं के विकास के साथ ढांचागत होता गया और कमजोर से कमजोर पुरुष भी औरतों पर राज करने लगे।

पित्तृसत्ता की अवधारणा व इतिहास को सामने रखने के बाद कमला भसीन ने सभी सहभागियों से एक प्रश्न किया कि अगर पित्तृसत्ता/पुरुषसत्ता को हटाना है तो उसका उल्टा क्या होगा?

कुछ सहभागियों का उत्तर आया मातृसत्ता! कमला भसीन जी ने फिर एक और प्रश्न किया कि तो फिर मलेरिया का उल्टा क्या होगा? क्या हम एक बिमारी को हटाकर दूसरी बीमारी लाने की बात करते हैं? अगर नहीं तो पित्तृसत्ता जैसी बीमारी का उल्टा मातृसत्ता नहीं हो सकता। मातृसत्ता भी एक बीमारी होगी। हम किसी सत्ता का नियंत्रण एक पक्ष से निकालकर दूसरे पक्ष में हस्तान्तरण की बात नहीं करते। हमारी परेशानी सिर्फ मर्दों की सत्ता, उनके जुल्मों से ही नहीं है। हमें परेशानी हर जुल्मी सत्ता से है, अन्याय से है तथा गैरबराबरी पर टिके ढांचे से है। अतः हमारी लड़ाई पुरुषों से नहीं पुरुषसत्ता से है। पित्तृसत्ता की लड़ाई, पुरुष बनाम औरत नहीं है, पित्तृसत्ता बनाम समानता की लड़ाई है। इन दो विचारधाराओं के बीच की लड़ाई है। अतः पित्तृसत्ता का उल्टा है समानता।

कमला भसीन ने इस चर्चा को मर्दानगी के साथ भी जोड़ा। उनका कहना था कि जेण्डर के

मुद्दे सिर्फ औरतों से वास्ता नहीं रखते! औरतपन या जनानगी का अस्तित्व किसी शून्य में नहीं है बल्कि पुरुषत्व व मर्दानगी के साथ है। यह भी ज़रूरी है कि पित्तृसत्ता को चुनौती देने वाले आंदोलन में मर्दों की भागीदारी भी हो, क्योंकि यह सिर्फ़ औरतों को ही नुकसान नहीं पहुंचाती, बल्कि पुरुषों के लिए भी विकल्प कम कर देती है, उन्हें भी एक तयशुदा सांचे में डाल व ढाल कर कठोर व अमानवीय बना देती है। इसके साथ ही कमला भसीन ने सभी सहभागियों के साथ मर्दानगी पर चर्चा आगे बढ़ाने के लिए एक सवाल रखा।

सवाल- पित्तृसत्ता में पुरुषों/मर्दों को किस प्रकार के नुकसान व परेशानियां होती है? चर्चा में निकल कर आए मुख्य बिन्दु इस प्रकार थे-

आर्थिक दबाव, घर चलाने की आर्थिक जिम्मेदारी, भावात्मक, नर्म दिल और संवेदनशील होने से रोका जाता है। अपनी कमज़ोरी व डर को स्वीकारने से रोका जाता है। जबरदस्ती-रक्षक, पालक व चौकीदार की भूमिका निभाने के लिए तैयार किया जाता है। पुरुषों के लिए भी वस्त्र पहनने की विविधता नहीं है। बिना मर्ज़ी के विवाह पुरुषों को भी करने पड़ते हैं। हर प्रकार का आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक, राजनैतिक दबाव पुरुषों पर भी रहता है मर्द होने के लिए।

इन सब बिन्दुओं के आधर पर निकल कर आया कि पित्तृसत्ता पुरुषों को भी नुकसान पहुंचाती है। उनके लिए भी पित्तृसत्ता में कठिनाइयों व परेशानियां है, लेकिन वह पुरुषों को सीध तौर पर दिखाई नहीं देती, क्योंकि पित्तृसत्ता में तात्कालिक (Short Run) समय में पुरुषों के पास सत्ता भी है। पित्तृसत्ता में न औरत खुश है न पुरुष खुश है। अगर पुरुषों ने नरक बनाया है तो वह भी उसी नरक में जी रहे हैं।

सामाजिक-आर्थिक बदलावों के कारण जेण्डर भूमिकाओं व संबंधों, पर असर पड़ रहा है। अगर पुरुष नहीं बदलेंगे और औरतें बदलेगी तो शादियां टूटेगी, क्योंकि आज बहुत सी औरतें हैं जिन्हें पति नहीं चाहिए, साथी चाहिए जो प्यार व इज़्ज़त करने वाला हो। जब तक स्त्री आज़ाद नहीं होगी तब तक पुरुष भी आज़ाद नहीं होगा।

मर्दानगी लड़कों व पुरुषों को दी गई एक सामाजिक परिभाषा है। जेण्डर की तरह यह भी समाज द्वारा रचित है प्राकृतिक नहीं है। इसकी जड़ में भी पित्तृसत्ता है। चारित्रिक विशेषताओं के रूप में ‘‘मर्दानगी’’ सामाजिक-सांस्कृतिक है। जेण्डर की तरह यह भी स्थिर नहीं है। यह लगातार नए रूप लेती रहती है। कामकाज वर्ग तथा अभिजात्य वर्ग की मर्दानगी में बहुत फ़र्क़ हो सकता है।

कमला जी आगे कहती है कि मर्दानगी की वजह से पुरुषों ने अपनी भावनाओं व शरीर दोनों को नुकसान पहुंचाया है। वह अमानवीय हो गए हैं। बलात्कार, घरेलू हिंसा, कठोरता को अपनाकर वह हैवान बन रही है। यह कहाँ सही है कि पूरे परिवार की इज़्ज़त स्त्री की यौनि में समा जाती है, जबकि बलात्कार में उसका अपराध नही होता और जो पुरुष बलात्कार करता है उससे परिवार की इज़्ज़त लुटती नहीं है? अतः यह पित्तृसत्ता है जिसने बलात्कार को साज़िश के तहत स्त्री की यौनिकता पर नियंत्रण के लिए एक हव्वा बना रखा है।

पित्तृसत्ता ने पुरुषों को मर्दानगी के ढाँचे में ढालकर अमानवीय व पाश्विक बना दिया है। अतः पुरुषों को अपने ऊँपर भी सोचने की ज़रूरत है। वह सोचे, इस पर बात करे व अपने समूह

बनाकर इसके खिलाफ़ लड़े। मात्रा महिला हिंसा के खिलाफ़ लड़ने से काम नहीं चलेगा। पुरुषों को समुह बनाने की ज़रूरत है जो पित्तृसत्ता के खिलाफ़ लड़े, जो पुरुषों के दिमाग में व्याप्त हिंसा के खिलापफ लड़े।

इसके साथ ही कमला जी ने जेण्डर की अवधारणा और भूमण्डलीकरण के दौर में पित्तृसत्ता के बदलते स्वरूपों पर अपनी पूरे एक दिन की चर्चा समाप्त की। और कमला भसीन द्वारा लिखित गाना– पित्तृसत्ता की काली करतूतें हम जान गए हैं... गाकर सहभागियों ने इस सत्र का समापन किया।

कमला जी के साथ दो सत्रों के दौरान हुई बातचीत में कई सारे दिलचस्प पहलू सामने आए, उन्होंने जेण्डर की अवधारणा और भूमण्डलीकरण के दौर में पितृसत्ता के बदलाते स्वरूपों पर चर्चा करते हुई सामाजिक परिचयों के अलग–अलग स्वरूपों, उनके अंतर्संबंध और पितृसत्ता से उनके रिश्तों के सवाल, जेंडर और पितृसत्ता का फर्क, जेंण्डर और सेक्स का फर्क, पितृसत्ता का ढ़ाचा और विचारधारा, औरतों की श्रम शक्ति, प्रजनन क्षमता, उत्पादन, यौनिकता आदि पर पुरुषों के नियंत्रण, मर्दवाद और मुक्ति के सवाल इत्यादि को उभार कर रखा। कमला जी के इन सत्रों के साथ शुरुआत ने सहभागियों के बीच इस कोर्स के लिए आधार निर्माण का काम किया। इन सभी पहलुओं से जो बात उभकर आती है, वह यह है कि पितृसत्ता स्थायी या गैर–ऐतिहासिक चीज नहीं है।। समय के तहत यह परिवर्तनशील भी होता है, लेकिन पितृसत्ता का हमेशा ये दावा रहा है कि वह प्राकृतिक व गैर–ऐतिहासिक हैं, यानि उसे बदला नहीं जा सकता। पितृसत्ता के इस छल को उजागर करने के लिए उसके ऐतिहासिक विकास का व्याख्यान पेश करके नारीवाद उस पर चोट कर सकता हैं और विकल्प का रास्ता दिखा सकता है। यह नारीवाद की खासियत है कि वह प्राकृतिक दिखने वाली चीजों के सामाजिक निर्माण वाले रहस्य और उसके पीछे छिपी हुई गैर–बराबरी/असमानता को उजागर करता है।

25 अप्रैल, दोपहर का सत्रा

महिला हिंसा

जया व मधु

दूसरे दिन के दोपहर के सत्र की शुरुआत भी पहले के सत्र की तरह सहभागियों द्वारा गानों से हुई। इस सत्र में महिला हिंसा पर चर्चा के लिए अंकुर संस्था की संस्थापक व डायरेक्टर जया जी आइ, जिनका परिचय व स्वागत मधु द्वारा किया गया। जया जी के साथ जागोरी की मधु जो कि वहाँ ट्रैनिंग व रिसर्च मैनेजर है ने भी इस सत्र की चर्चा को आगे बढ़ाया। जया जी ने भी अपनी बातचीत शुरू करने से पहले यही कहा कि यह एक अदान प्रदान की प्रक्रिया है, कोई किसी को सिखाता नहीं है। हम पुख्ता तरीके और से भी सीखते हैं जब हम सीखे हुए को आजमाते हैं।

इस पूरे सत्र में पित्तृसत्ता और हिंसा के सम्बन्ध, हिंसा का अर्थ व परिभाषा, हिंसा के कारण, हिंसा के अलग-अलग रूप/स्वरूपों पर चर्चा हुई। साथ ही महिला हिंसा से लड़ने की अपने-अपने कार्यक्षेत्र व अलग-अलग स्थितियों में क्या रणनीतियां हो सकती हैं इस पर भी केस-स्टडी के विश्लेषण के जरिए चर्चा हुई।

सत्रा की शुरूआत में जया जी ने सभी सहभागियों से प्रश्न किया। पित्तृसत्ता व हिंसा के बीच क्या रिश्ता हैं और कैसे देखते हैं? सहभागियों द्वारा चर्चा में आए बिन्दुओं को एक चार्ट पेपर पर लिखा गया जिसमें उठे मुख्य मुद्दे इस प्रकार हैं-

पित्तृसत्ता को कायम रखने के लिए हिंसा का प्रयोग किया जाता है। संसाधनों व सम्पति पर नियंत्रण के लिए हिंसा का प्रयोग किया जाता है। पित्तृसत्ता का विरोध करने पर हिंसा का प्रयोग किया जाता है। पित्तृसत्ता के सोच पर नियंत्रण ढीला होने पर हिंसा का प्रयोग किया जाता

है। पित्तृसत्तात्मक समझ से अलग यौनिक रुझानों को रोकने के लिए हिंसा का प्रयोग किया जाता है। पित्तृसत्ता में सबकी भूमिकाएं सुनिश्चित है तो सुनिश्चित भूमिकाओं को तोड़ने पर सत्ताधारियों द्वारा सत्ताहीनों के प्रति हिंसा का प्रयोग किया जाता है।

इस सब चर्चा से निकल कर आया कि महिला हिंसा की जड़ में पित्तृसत्ता है। अतः अगर महिला हिंसा को खत्म करना है तो पित्तृसत्ता से लड़ना होगा। इन्हीं मुद्दों को लेकर चर्चा हिंसा क्या है, परिभाषा व स्वरूप की ओर बढ़ी।

हिंसा क्या है पर भी सहभागियों के साथ चर्चा में निकल कर आया कि -मारना पीटना, ताने देना, मानसिक दबाव डालना, किसी व्यवसाय में औरतों को न लेना, औरतों के श्रम का अवमूल्यन करना, बिना मर्जी के किसी के साथ जबरदस्ती यौन संबंध बनाना/स्पर्श करना, आत्महत्या, खाना न देना, राज्य द्वारा हिंसा-स्वास्थ्य सेवाओं में भेदभाव, (मीडिया) प्रचार-प्रसार माध्यमों द्वारा की गई हिंसा, शिक्षा के समान अवसर न देना, आदि हिंसा कहलाते हैं। मुद्दों के आधार पर हिंसा के अलग-अलग स्वरूप निकलकर सामने आए, जिन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया-

(१) शारीरिक हिंसा, (२) मानसिक हिंसा, (३) शाब्दिक हिंसा (४) भावात्मक हिंसा, (५) सामाजिक हिंसा, (६) आर्थिक हिंसा (७) राजनैतिक हिंसा (८) यौनिक हिंसा (९) बौद्धिक हिंसा (१०) ज्ञानात्मक हिंसा आदि।

इस चर्चा से यह साफ हुआ कि सिर्फ़ शारीरिक हिंसा ही हिंसा नहीं है यह काफी व्यापक है। यह औरतों की ज़िन्दगी के हर क्षेत्र पर असर कर रही है। बदलते समय के साथ-साथ हिंसा का स्वरूप और भी जटिल होता जा रहा है। यह अप्रत्यक्ष रूप से जीवन के हर हिस्से को प्रभावित करती है। जैसे मीडिया व संचार माध्यमों द्वारा औरतों को, किसी वर्ग व जाति को नीचा दिखाने के लिए प्रयोग किया जाता है और पूंजीवाद के भूमण्डलीकरण के साथ इन्सानों को उपभोग की वस्तु बना दिया गया है और महिलाओं का वस्तुकरण किया जा रहा है। चर्चा से एक बात पर काफ़ी स्पष्ट समझ उभर कर आई कि हिंसा चाहे वह दोनों पक्षों की रजामंदी से ही हो हिंसा होती है।

सारी चर्चा को समेटते हुए जया जी ने एक पिरामिड चार्ट पर बनवाया जिसे उन्होंने पित्तृसत्ता का गढ़ कहा-

☞ पित्तृसत्ता का गढ़

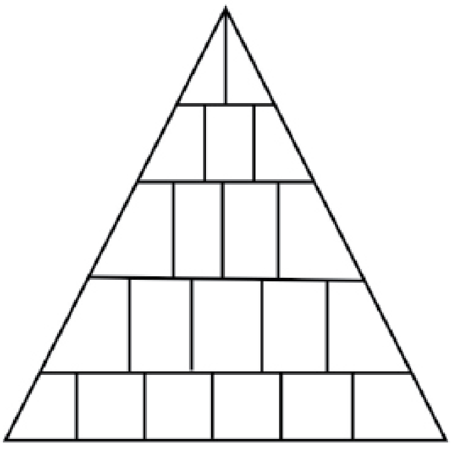

मधु व जया जी ने कहा कि पित्तृसत्ता बिना हिंसा के नहीं चल सकती। पित्तृसत्ता को अपने ढांचे को कायम रखने के

लिए हिंसा की जरूरत पड़ती है। पित्तृसत्ता के वर्चस्व में सभी है स्त्री व पुरुष। अतः पित्तृसत्ता द्वारा निर्धारित नियमों को अगर कोई तोड़ता है तो उस पर होने वाली हिंसा को समाज में स्वीकार्यता है। हम सब इसकी गिरफत में हैं। पित्तृसत्ता का पूरा एक ढांचा है जिसकी एक भी ईंट खिसकी तो वह ढह सकता है, अतः पित्तृसत्ता के इस ढांचे/गढ़ को कायम रखने के लिए हिंसा बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। परम्पराओं व रीतियों के निर्वाह को कायम रखने में पित्तृसत्ता हिंसा का सहारा लेती है। हिंसा से मुक्ति पित्तृसत्ता के गढ़ को धराशाही करके ही हो सकती है। विश्व में डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन जैसे कुछ देश है जहां पित्तृसत्ता कमज़ोर हुई है, किन्तु विश्व भर मे लगभग सभी जगह पित्तृसत्ता अपने हिंसात्मक रूप के साथ कायम है। जो हिंसा सामने दिखती है उसके खिलाफ़ हम प्रत्यक्ष रूप से लड़ सकते हैं, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से होने वाली हिंसा को पित्तृसत्ता से लड़े बिना नहीं रोका जा सकता। अतः महिला हिंसा को खत्म करने के लिए पित्तृसत्ता से लड़ने की ज़रूरत है।

महिला हिंसा के कारणों व स्वरूपों से जुड़े मुद्दों पर इससे आगे केस अध्ययन विश्लेषण के माध्यम से और अधिक चर्चा हुई। सभी सहभागियों को चार समूहों में विभाजित कर दिया गया जिसमें से एक समूह पुरुष सहभागियों का था। सभी को महिला हिंसा से जुड़ा एक-एक केस अध्ययन करने के लिए दिया गया। हर समूह के सहभागियों ने अपनी समझ व अनुभवों के आधार पर केस में दी गई हिंसा के स्वरूपों को पहचान कर अलग-अलग रणनीति सोची। अपने समूहों में चर्चा के बाद प्रत्येक समूह से दो सहभागियों द्वारा अपने समूह में किए गए केस विश्लेषण प्रस्तुत किया। जिसके मुख्य बिन्दु निम्न प्रकार है-

केस - रमली का रिश्ता

हिंसा के स्वरूप- पढ़ाई रोक दी गई, बाल श्रम, बेमेल विवाह- अपने से काफ़ी बड़ी उम्र के पुरुष से रिश्ता आदि हिंसा के स्वरूप सामने आए।

सुझाव व समाधान - चर्चा में सुझाव आए कि रमली शादी के लिए मना करे। अपनी पढ़ाई फिर से जारी रखे। साथ साथ कोई काम भी कर सकती है। इस प्रस्तुतीकरण पर सहजकर्त्ताओं द्वारा केस में मध्यस्थता करते हुए ध्यान रखने के कुछ बिन्दु सुझाए गए-

(जया) इसमें साफ दिख रहा है कि रमली के साथ भावनात्मक व मानसिक हिंसा हुई है। किसी केस के आने पर स्थिति के समय को समझते हुए हम सुझाव दे सकते हैं, अपनी स्थिति को वह बेहतर समझती है। अतः वही अपने लिए तय करे कि उसे क्या करना है। मधु यहां दो तरह की बात की गई स्थिति व समाधान। अतः हमें समाधान में तीन तरह की रणनीति अपनानी होगी। एक जो तुरन्त करने की ज़रूरत है। तात्कालिक ज़रूरत को पूरा करना जैसे रमली के केस में उसकी शादी रुके व पढ़ाई चालू हो। दूसरी मध्यकालीक रणनीति जैसे रमली के माता पिता की समझ साफ़ करना व तैयार करना कि वे रमली की शादी जल्दी न करें व उसे पढ़ने दें आदि। तीसरी दीर्घकालिक रणनीति जैसे ग्राम के स्तर पर जेण्डर समानता के लिए काम किया जाए, ताकि इस तरह की समस्या फिर न आए। अतः किसी भी केस में काम करते हुए हमें हमेशा दो स्तर पर काम करना होता है- एक, तुरन्त रिलीफ़ के लिए, दूसरा समस्या की जड़ को खत्म करने का।

केस - सिया कहाँ जाए?

हिंसा के स्वरूप- सिया के केस में घरेलू हिंसा पर अधिक चर्चा हुई और इसमें सम्पत्ति के अधिकार, कौटुंबिक हिंसा, आर्थिक हिंसा, शारीरिक हिंसा, न्यायिक व्यवस्था आदि पर बातचीत की गई।

सुझाव व समाधान - सुझावों व समाधान के तौर पर काउंसलिंग- दोनों सिया व उसके पति की, आश्रय-गृह की मदद, DV-२००५ के जरिए सिया को हिस्सा दिलाने व पति से गुजारा भत्ता दिलाने की बात आई। सहजकर्त्ताओं द्वारा चर्चा में दो महत्वपूर्ण मुद्दे निकल कर सामने आए। एक तो सिया व्यक्तिगत तौर पर सक्षम बने इस तरह की स्थितियां बनाने का काम करना चाहिए। दूसरा कानूनी आधार पर आज महिलाओं के पास अधिकार तो है, किन्तु उन तक पहुंच सामाजिक व्यवस्था की वजह से दुर्लभ हो जाती है। इसलिए अब हमें मुक्ति की बात भी करनी चाहिए। महिलाएं हिंसा से मुक्ति की बात करें। हिंसा के लिए न कहें।

केस- जैसी करनी वैसी भरनी?

हिंसा के स्वरूप- इस केस में मुख्यतः जो हिंसा के स्वरूप सामने आए वह थे शारीरिक, मानसिक, यौनिक, भावनात्मक व सत्ता प्रशासनिक हिंसा।

सुझाव व समाधन - समाधन के सुझावों के तौर पर आया कि जब धमकियां दी जा रही थीं तभी पुलिस में शिकायत की जानी चाहिए थी। आपसी बातचीत से हल निकल सकता था। पुलिस/प्रशासन पर केस दर्ज करने व कार्यवाही पर जोर दिया जाए। बच्ची की काउंसलिंग की जाए आदि।

इस केस में एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा निकल कर आया कि मीराबाई की अपनी मर्जी से किसी से प्रेम करना व उसकी इच्छा व्यक्त करना, इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि औरत की इच्छा की कीमत समाज नहीं मानता, पर हमें इसे समझना ज़रूरी है। हमेशा औरत की इच्छा की क़द्र नहीं की जाती और अगर वह व्यक्त करती है तो उसे दण्ड दिया जाता है। हमारे पौराणिक ग्रंथ भी इसे सही ठहराते हैं, यह बात रामायण में शूर्पनखा के नाक काटने के उदाहरण से स्पष्ट की गई। महिलाओं की प्रेम भावनाओं की समाज में स्वीकृति नहीं है। जब हम हक़ों की बात करते हैं तो प्रेम करने के हक़ को भी मान्यता मिलनी चाहिए।

केस-गांव का मामला गांव में निपटाना चाहिए?

हिंसा के स्वरूप- यहां हिंसा के स्वरूपों के तौर पर शारीरिक, यौनिक, मानसिक, सामाजिक व राजकीय हिंसा को चिन्हित किया गया।

सुझाव व समाधन - समाधानों के सुझाव के तौर पर शरबती को तुरन्त पुलिस सुरक्षा मुहैया कराने के साथ संगठन को मजबूत करने की बात की गई। शरबती की परिस्थिति में तीसरे व्यक्ति/NGO, संगठन इत्यादि के हस्तक्षेप का सुझाव भी आया।

इस केस के दौरान यह भी निकल कर आया कि गांव में महिला समीतियां जो बनाई जाती

हैं उनमें गांव के प्रभावशाली व्यक्तियों जैसे सरपंच आदि की पत्नियां होती हैं। और साथ ही ज़्यादातर लोग पित्तृसत्तात्मक सोच से प्रभावित होते हैं। अतः सरकारी महिला समीतियों से इतर ऐसे महिला संगठनों की ज़रूरत है जो महिला मुद्दों पर नारीवादी समझ रखते हो तथा महिलाओं का सही मायने में सशक्तिकरण कर सकें।

केस अध्ययन की इस पूरी प्रक्रिया से निकलकर आया कि केस आने पर लड़ाई/कार्य पद्धति बनाते हुए समय व परिस्थिति को ध्यान में रखने की ज़रूरत है तथा तात्कालिक व दीर्घकालिक दोनों स्तर की रणनीतियां तैयार करने की ज़रूरत है।

अन्ततः सहजकर्ताओं ने इस बात के साथ सत्रा का समापन किया कि यह समझ साफ़ करना ज़रूरी है कि वास्तव में हिंसा है क्या? तथा समाधानों की ओर बढ़ते हुए सजगता बरतने की ज़रूरत है। यह सत्र जया जी की मधुर आवाज़ में एक गाने ‘‘कौन कहता है जन्नत इसे... के साथ सम्पन्न किया गया।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ

बातचीत में जो सबसे अहम पहलु सामने आए वे ये हैं कि-महिला हिंसा को अक्सर शारीरिक हिंसा के रूप में ही पारिभाषित किया जाता रहा है। हिंसा की एक व्यापक संज्ञा समाज में स्थापित करना अभी एक बड़ी चुनौती है। गौरतलब बात यह भी है कि हिंसा को सिर्फ़ व्यक्ति के स्तर पर ही नहीं, बल्कि व्यवस्थागत हिंसा के रूप में भी देखा जाना चाहिए। शोषण की अलग-अलग व्यवस्थाओं के बीच जटिल मिलीभगत के चलते हिंसा का सवाल और भी बहुरूपी हो जाता है। जैसे महिलाओं को कम वेतन देना, अगर पूंजीवाद के लिए लाभदायी होता है तो पितृसत्ता के वर्चस्व के चलते ऐसी असमानता/गैर-बराबरी को समाज में स्वीकार्यता भी मिल जाती है। उसी तरह बहुत सारी नौकरियों में महिलाओं की सुरक्षा व ज़रूरतों को ध्यान में नहीं रखा जाता और अगर वह संकट में पड़ती है तो सारा दोष उन्हीं पर थोप दिया जाता है। चुनौती इस बात की है कि नारीवादी विश्लेषण का प्रयोग कर हिंसा की अलग-अलग शोषण की व्यवस्थाओं के बीच मिलीभगत को उजागर किया जाये और हिंसा के दृश्यमान और अदृश्यमान सभी रूपों को संघर्ष के फ़ोकस में लाया जाये। साथ ही उस आधार पर संघर्ष की तात्कालिक और दूरगामी योजनाओं को तैयार किया जाए।

26 अप्रैल 2012 – पहला सत्र

शहर का अधिकार

अनुप्रिया

अनुप्रिया जो कि इस सत्रा में सहजकर्त्ता विशेषज्ञ थी, वह जागोरी में 'सुरक्षित दिल्ली अभियान' की समन्वयक/प्रबंधक है। सत्रा की शुरूआत अनुप्रिया के साथ सहभागियों के परिचय के साथ हुई। उसके उपरान्त पहले दो दिन के दौरान हो चुकी चर्चाओं की रिपोर्टिंग हुई। पूरे सत्र में जो मुख्य बिन्दु निकल कर आए वे इस प्रकार है कि महिलाओं में हिंसा का डर उनकी ज़िन्दगी की दिनचर्या का मुख्य हिस्सा बन चुका है। शहरों का अधिकार व महिला सुरक्षा का अन्तसबंध है। शहरी के विकास व निर्माण ऐसे हो कि वह हाशिए पर जो लोग हैं, उनके लिए सुरक्षित व सहज ही महिला सुरक्षा की रणनीतियों की तैयारी में ध्यान रखने वाली मुख्य बातें क्या हैं? दुनिया के स्तर पर महिला सुरक्षा के मद्देनजर क्या-क्या अभियान चल रहे हैं? जागोरी ने सुरक्षित दिल्ली अभियान के तहत क्या-क्या किया और अन्य संगठनों/संस्थानों के साथ मिलकर जागोरी क्या कर रही है?

अनुप्रिया ने महिला सुरक्षा से अपनी बात की शुरूआत की ओर सभी सहभागियों से कहा कि हमें महिला सुरक्षा के लिए अपनी सोच को महिलाओं के साथ क्या हिंसा हो रही है वहां तक सीमित न रखकर महिला हिंसा क्यों हो रही है उसके बारे में सोचना होगा तभी हम महिला सुरक्षा की पृष्ठभूमि तैयार कर पाएंगे। महिला सुरक्षा पर चर्चा करते हुए जो बातें निकल कर आई वह थी कि महिला हिंसा का मुख्य तत्व है डर और यह डर हर वक्त महिलाओं की मानसिकता में बना रहता है, हम हमेशा इस हिंसा के डर से बचने के उपायों पर सोचते रहते हैं यह महिलाओं की दिनचर्या व गतिविधियों के साथ जुड़ा हुआ है। यह डर ही तय करता है कि कहां जाए, क्या पहने, किसके साथ जाए? औरतों के दिमाग में अपनी सुरक्षा को लेकर हमेशा एक दबाव बना रहता है। महिला हिंसा के डर को खत्म करने व महिला सुरक्षा को लेकर महिला आंदोलन के द्वारा काफ़ी काम किया गया जिसकी बदौलत कुछ कामयाबी भी हासिल हुई है। कुछ कानून भी बने हैं, परन्तु यह एक बहुत बड़ा काम है, और इसमें बहुत सी खामियां हैं। अतः अभी हमें लम्बी लड़ाई लड़नी भी है।

अनुप्रिया ने महिला सुरक्षा के मुद्दे को शहर पर किसका अधिकार है इससे जोड़ा। सभी सहभागियों से चर्चा की कि सार्वजनिक जगह से उनका क्या तात्पर्य है? कौन-कौन से स्थल सार्वजनिक स्थलों के तौर पर देखे जाते हैं? चर्चा में दो प्रकार के सार्वजनिक जगह उभर कर आई।

(१) पूर्ण सार्वजनिक स्थल-पार्क, सड़क, स्टेशन, बाजार, बस स्टाप आदि।

(२) निजी सार्वजनिक- स्कूल, अस्पताल, कॉलोनी आदि।

सार्वजनिक जगहों की पहचान के बाद शहर पर अधिकार की समझ को स्पष्ट करने के लिए सभी सहभागियों को चार समूहों में बांट कर समूह कार्य दिया गया। प्रोजेक्टर के ऊपर कुछ सार्वजनिक स्थलों का विवरण दिखाया गया। और प्रत्येक समूह को एक पहचान व एक समय दिया गया, जिसके आधार पर उन सार्वजनिक स्थलों पर उस पहचान के साथ दिए गए समय के अनुसार पहुँच व इस्तेमाल पर अपने समूह में विस्तृत चर्चा करनी थी और उसका प्रस्तुतीकरण करके अन्य समूहों के साथ अपनी अपनी चर्चा को साझा करना था। चारों समूहों को दी गई पहचान व समय का विवरण निम्नांकित है-

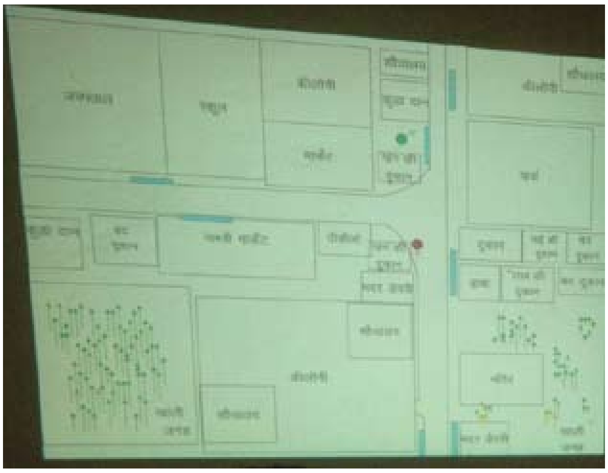

१. पुरुष - दिन का समय।

२. पुरुष - रात का समय।

३. महिला - दिन का समय।

४. महिला - रात का समय।

इन विषयों पर चर्चा के दौरान जो मुख्य बातें उभर कर आईं, वे इस प्रकार हैं।

(१) पुरुष व रात का समय- बहुत सारी सार्वजनिक जगहें हैं जहां पुरुषों की पहुंच है और वह उन्हें इस्तेमाल भी करते हैं, लेकिन जंगल/निर्जन स्थानों, कुछ जगह के शौचालयों आदि पर पुरुषों की पहुंच तो है, लेकिन इस्तेमाल करने में दिक़्क़त आती है। पुरुषों को लूटमार/चोरी का डर रहता है और कुछ शौचालयों में खास पहचान वाले पुरुषों के साथ यौनिक हिंसा की वारदातें होने का डर भी उनके अन्दर रहता है।

(२) पुरुष व दिन का समय- सभी सार्वजनिक जगहों पर ज़्यादातर पुरुषों की पहुंच है और इस्तेमाल भी आसान है। पुरुष वाली पहचान से तो लगभग सभी जगह पहुंच है, लेकिन उनकी अन्य पहुंचाने जैसे जाति, वर्ग, धर्म इत्यादि से पहुंच व इस्तेमाल के सम्बन्ध बदल जाते हैं।

(३) महिला व दिन का समय - दिन को भी अलग-अलग हिस्सों में बांटने की ज़रूरत है, उजाले

के संदर्भ में। उससे तय होगा कि किस पहर में कहां पर महिलाओं की पहुंच है व उनमें से कितनी जगहों का वह इस्तेमाल करती है। कुछ पूर्ण सार्वजनिक व निजी सार्वजनिक जगहों पर महिलाओं की पहुंच तो है, पर इस्तेमाल मुमकिन नहीं। चर्चा में यह भी निकल कर आया कि खाली जगहों पर महिलाओं को हिंसा का डर रहता है साथ ही बहुत भीड़ वाली जगहों पर भी महिलाओं के साथ आना हिंसा होती है।

(४) महिला रात का समय- ज़्यादातर सार्वजनिक जगहों पर महिलाओं के द्वारा इस्तेमाल तो क्या पहुँच भी संभव नहीं है।

चारों समूहों की चर्चा में उभरकर आया कि सार्वजनिक स्थलों पर पहुँच व इस्तेमाल का संबंध उसके निर्माण की सोच से जुड़ा है। ज़्यादातर सार्वजनिक स्थानों में महिलाओं की पहुंच उसी तरह के स्थानों में है जहां उन्हें कोई काम हो, कोई कारण हो, किन्तु पुरुष बिना किसी काम व कारण के भी बहुत से सार्वजनिक स्थलों पर पहुंच सकते हैं व इस्तेमाल करते हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा निकला कि क्यों पहुँच व इस्तेमाल में महिलाओं के लिए दिक़्क़तें हैं? उनको उत्पीड़न का डर, सुरक्षा करने वालों द्वारा भी हिंसा का डर, परिवार का डर, चारित्रिक लांछन का डर आदि बातें हैं जो पहुँच व इस्तेमाल को प्रभावित करती है।

सार्वजनिक स्थलों पर पहुँच व इस्तेमाल की चर्चा से आगे बढ़ते हुए अनुप्रिया ने LCD द्वारा PPT प्रस्तुत करते हुये महिलाओं की सुरक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों, सुरक्षा रणनीतियों आदि पर चर्चा की (देखें परिशिष्ट ३)

इस चर्चा में मुख्य रूप से सामने आया कि महिला की सुरक्षा को प्रभावित करने में जो कारक ज़िम्मेदार है उनमें से मुख्य है-सार्वजनिक स्थानों पर पुरुषों का दबदबा, सुरक्षा का दायित्व अक्सर महिलाओं पर ही थोपा जाता है, जगहों के इस्तेमाल में सामाजिक पहचान, समय व उद्देश्य का असर, जगहों के खराब डिजाइन व रखरखाव वाली आधारभूत सुविधाएं सुरक्षा की कमी को बढ़ाते हैं। कारकों से बात आगे ले जाते हुए अनुप्रिया ने बताया कि एक शहर या गांव तभी सुरक्षित होता है जब उनका निर्माण हाशिए पर जो है उनको ध्यान में रखकर किया जाए तथा सभी बिना हिंसा के डर के जीवन का आनंद उठा सके और इसके साथ ही सुरक्षित शहर के लिए उन्होंने और भी सुझाव दिए जो कि PPT में लिखित है।

तत्पश्चात उन्होंने सुरक्षा रणनीतियों के विभिन्न पक्षों पर बातचीत करते हुए जागोरी द्वारा दिल्ली में सुरक्षा अभिमान के लिए अपनाई गई रणनीतियों को साझा किया। जिसमें सुरक्षा ऑडिट, मैपिंग, समुदाय से चर्चा, पणधरियों के साथ भागीदारी की स्थापना हस्तक्षेपों का नियोजन व कार्यान्वयन, निगरानी व मूल्यांकन आदि जैसे रणनीतियों पर विस्तृत चर्चा करते हुए कहा कि सुरक्षा रणनीतियों में तात्कालिक व दीर्घकालिक दोनों स्तरों पर योजनाएं बनाने की ज़रूरत है। प्रत्येक संस्था अपनी ज़रूरत के हिसाब से उपरोक्त रणनीतियों में से चुनाव कर सकती है कि वह क्या रणनीति अपनाए। साथ ही अनुप्रिया ने जागोरी की तरफ से सभी सहभागियों व उनकी संस्थाओं को महिला सुरक्षा के लिए जागोरी द्वारा अपने अनुभवों का रणनीतियों की विस्तृत जानकारी साझा करके मदद का आश्वासन भी दिया।

इसके साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि वैश्विक पैमाने पर महिला सुरक्षा को लेकर किस-किस तरह के अभियान चल रहे हैं। सत्र के अन्त में सभी सहभागियों से एक अपील के साथ अनुप्रिया ने अपनी बात खत्म की कि इस कार्यशाला में जब भी खाली समय मिले सभी सहभागी अपने-अपने राज्यों के हिसाब से बैठकर चर्चा व रणनीति बनाने का प्रयास करें कि वह कैसे अपने-अपने कार्यक्षेत्र में महिला सुरक्षा के लिए मिलकर काम कर सकते हैं।

बदलाव, सम्भावनाएँ और चुनौतिया

पिछले काफ़ी सालों से शहरों में सार्वजनिक स्थलों का लगातार संकुचन होते दिखाई देने लगा है। इसके साथ ही व्यक्ति की सुरक्षा का ज़िम्मा खुद उसी पर थोप दिया जाने लगा है। कॉलोनियों में सुरक्षा के मद्देनजर गेट लगने लगे हैं। जिससे 'अंदर वाले' और 'बाहर वाले' इस तरह के भेद बनते हैं। उसके अलावा गरीबों को ही अक्सर सुरक्षा के लिए खतरा माना जाता है। गरीब को शहर के एक कोने में धकेल दिया जाता है जहाँ सार्वजनिक सुविधएँ न के बराबर होते हैं। जिससे गरीब औरतों को जो कि बहुसंख्यक हैं अनेक सुरक्षा सम्बन्धी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। साथ ही साथ, दूसरी तरफ नौकरियों के कारण आजकल ज़्यादा से ज़्यादा महिलाएँ घरों से बाहर निकलने लगी हैं, लेकिन शहरों के स्वरूप और निर्माण करते समय हाशिए पर जो लोग हैं यानि की महिलाएँ और पिछड़े तबके के लोग उसको ध्यान में नहीं रखा जाता जिससे उनके लिए शहर और खासकर सार्वजनिक स्थल पहुँच से बाहर और असुरक्षित है। इसका मुख्य कारण नीति निर्माताओं की अपनी पित्तृसत्तात्मक और खास वर्ग की समझ है। चुनौती यह है कि सार्वजनिक स्थलों की मात्रा और दायरा बढ़ाया जाए, ताकि सबसे लिए सुरक्षा की मांग की जा सके। नारीवादी आन्दोलन के हस्तक्षेप के चलते शहर और सार्वजनिक स्थलों में सुरक्षा की मांग बढ़ रही है जो कि महिलाओं और हाशिये पर रह रहे लोगों के शहर पर अधिकार के लिए एक सकारात्मक पहल है।

26 अप्रैल, दोपहर का सत्र

महिला स्वास्थ्य

दीपा

महिला स्वास्थ्य पर चर्चा के लिए जागोरी ने समा संस्था से जुड़ी दीपा को बुलाया। दीपा पिछले लगभग १५ सालों से स्वास्थ्य के मुद्दे पर काम कर रही है। वह सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं में लम्बे अर्से से स्वास्थ्य के मुद्दों पर ट्रेनिंग दे रही है तथा इसी मुद्दे पर रिसर्च व Action संबंधी प्रक्रिया से भी जुड़ी हुई है।

दीपा ने इस सत्र में सहभागियों के साथ समूह चर्चाओं, स्वास्थ्य मैपिंग, नाटक आदि गतिविधियों द्वारा स्वस्थ व अस्वस्थ को तय करने वाले लक्षणों, स्वास्थ्य की परिभाषा, स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों, स्वास्थ्य नीतियों को तय करने वाले कारकों व इन नीतियों का महिला स्वास्थ्य पर प्रभाव आदि विषयों पर चर्चा की।

सहभागियों के साथ संस्थाओं व वैयक्तिक परिचय के बाद दीपा ने सभी सहभागियों को चार समूहों में बांट दिया। हर समूह को अपने में से सबसे स्वस्थ व सबसे अस्वस्थ एक-एक व्यक्ति का चुनाव करना था और किस आधार पर यह तय किया इसका प्रस्तुति करने का समूह कार्य दिया गया।

चारों समूहों में चर्चा से एक-एक स्वास्थ्य व अस्वस्थ व्यक्ति के चुनाव के कारणों के तौर पर जो बिन्दु उभर कर सामने आए वह थे- स्वस्थ व्यक्ति जो संतुलित आहार लेते हैं, बीमार बहुत कम पड़ते हैं, बीमारी होने पर तुरन्त इलाज करवाते हैं, अच्छी नींद लेते हैं, जिन्हें मानसिक तनाव नहीं रहता, अपनी मर्जी से खाते हैं, शरीर के साथ जबरदस्ती नहीं करते, जल्दी थकान नहीं होती, खुश रहते हैं, शारीरिक व मानसिक तौर पर सामाजिक दबाव नहीं लेते, रक्तदान कर सकते हैं व करते हैं इत्यादि।

अस्वस्थ व्यक्ति- बार-बार बीमार पड़ते हैं मानसिक तनाव रहता है, समय पर इलाज नहीं करवा पाते। खाना कम खाते हैं, खून की कमी, नींद कम आना, वजन संतुलन से ज़्यादा या कम, ज़्यादातर सिर में दर्द रहना, कद, वजन व सुन्दरता को लेकर सामाजिक दबाव में रहते हैं, Depression इत्यादि। समूह चर्चा के दौरान उभर कर आया कि मात्र शारीरिक तौर पर स्वस्थ होना ही व्यक्ति के स्वस्थ होने के लिए ज़रूरी नहीं है, मानसिक स्वास्थ्य भी तय करता है कि व्यक्ति स्वस्थ है या नहीं और इसमें आर्थिक व सामाजिक कारक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

दीपा ने चर्चा को आगे बढ़ाते हुए सभी सहभागियों से प्रश्न किया कि यह कौन तय करता है कि स्वास्थ्य के लिये या व्यक्ति के लिए क्या जरूरी है और क्या गैर-ज़रूरी बहुत सारी चीज़ें

हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, पर ऐसा क्यों है कि कुछ चीज़ें आवश्यक और कुछ अनावश्यक है? चर्चा में सामने आया कि यह तय करने का कोई एक आधार या पक्ष नहीं है। यह एक जटिल व कई स्तरों पर तय होने वाली प्रक्रिया है कि किसके स्वास्थ्य के लिए क्या ज़रूरी है। यह व्यक्ति की विभिन्न पहचानों से भी प्रभावित होता है। यानि उसकी जाति, धर्म, वर्ग, जेण्डर, नस्ल आदि द्वारा। अतः स्वास्थ्य की परिभाषा अलग-अलग समाजों में अलग-अलग हो सकती है समाज के ढांचागत व्यवस्था व विचारधारा के वर्चस्व के आधार पर स्वास्थ्य को परिभाषित किया जाता है।

स्वास्थ्य की परिभाषा व उसे तय करने वाले आधारों को उजागर करने के लिए दीपा ने सहभागियों के साथ वैश्विक तौर पर व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले व स्वास्थ्य से जुड़े विभिन्न पक्षों पर चर्चा की। जिससे उभर कर आया कि व्यक्ति के स्वास्थ्य से जुड़े पक्षों में व्यक्ति का खाना, काम, जाति, वर्ग, शिक्षा, उसकी आर्थिक स्थिति (गरीबी), हिंसा, मानसिक स्थिति, स्वास्थ्य सेवाओं का निजीकरण, वातावरण, सफ़ाई, बाजार, मीडिया, राज्य, स्वास्थ्य शोध, डब्ल्यू.टी.ओ. आदि शामिल है। अतः स्वास्थ्य केवल स्वास्थ्य सेवाओं से नहीं, उपोक्त सभी पक्षों से तय होता है।

स्वास्थ्य नीतियों पर चर्चा को आगे बढ़ाते हुए दीपा ने वैश्वीकरण, राज्य व बाज़ार के संबंधों पर अपनी बात रखी। उन्होंने सभी सहभागियों से फिर प्रश्न किया कि क्या स्वास्थ्य नीतियां हमेशा एक जैसी रही हैं या फिर आज आप इसमें बदलाव देखते हैं? चर्चा से निकले मुद्दों को दीपा ने नव-उदारीकरण के साथ-साथ निजीकरण से जोड़ा। उन्होंने बताया कि ९० के दशक में नवउदारवादी नीतियों के आने से भारत के राज्य पर डब्ल्यू.टी.ओ. जैसी संस्थाओं द्वारा ज़्यादा दबाव बनाया गया कि वह सामाजिक सुविधाओं पर अपना बजट कम करे और इसे सार्वजनिक क्षेत्र से नीजी क्षेत्र की तरफ बढ़ावा दे, ताकि बाज़ार की अर्थव्यवस्था को मुनाफ़ा मिले। वैश्विक पैमाने पर यह प्रक्रिया चली है कि सामाजिक सुविधाओं, सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्रों का बड़े पैमाने पर निजीकरण हुआ है। बाज़ार अर्थव्यवस्था को फायदा पहुँचाने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी जन सुविधाओं को नीजी हाथों में दे दिया गया है। पहले जहां सरकारी अस्पतालों में मुफ़्त दवाईयां मिलती थी वह अब नहीं मिलती है। अब मशीनों द्वारा की जाने वाली जांचों के लिए ज़्यादातर निजी केन्द्रों में भेजा जाता है। सरकारी अस्पतालों के रख-रखाव पर व स्वास्थ्य जांच व चिकित्सा के लिए मशीनी उपकरणों पर खर्च लोगों की ज़रूरतों के आधार पर न होकर बाज़ार के मुनाफ़े के अनुसार हो रहा है। स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण का सीधा असर आम लोगों के स्वास्थ्य पर पड़ रहा है, ज़्यादातर इलाज गरीब वर्ग की पहुंच से बाहर है।

स्वास्थ्य नीतियों के महिला स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों पर चर्चा में मुख्यतः निकल कर आया कि ज़्यादातर स्वास्थ्य सुविधाएं जो सरकार द्वारा चलाई जाती हैं वह (Reproductive health) प्रजनन स्वास्थ्य के संबंध में है।(General Health) सामान्य स्वास्थ्य पर सरकारी बजट का न के बराबर खर्च किया जाता है। भारत जैसे देशों में ज़्यादातर महिलाएं एनीमिया, मानसिक तनाव व कुपोषण आदि से ग्रस्त हैं, लेकिन महिला स्वास्थ्य के नाम पर मात्र प्रजनन से जुड़ी सरकारी स्वास्थ्य सुविधाएं व स्वास्थ्य नीतियां हैं।

महिला स्वास्थ्य के लिए जो नीतियां, शोध, योजनाएं भी आ रही है वह भी पितृसत्तात्मक समझ से प्रभावित हैं, क्योंकि इन शोधों को करने वाले और लागू करने वाले पदों पर पितृसत्तात्मक समझ के साथ बैठे हुए लोग हैं। परिवार नियोजन की नीतियां व गर्भनिरोधकों के इस्तेमाल की ज़्यादातर ज़िम्मेदारी महिलाओं पर आती है। उदाहरण के लिए – सरपंच पद के लिए उन महिलाओं के चुनाव में खड़े होने पर रोक लगा दी गई जिनके दो से ज़्यादा बच्चे हैं। महिला स्वास्थ्य पर निजीकरण व उदारीकरण के असर के तौर पर आया कि बहुत सारे इस तरह की जांच व मशीनी उपकरणों का प्रयोग प्रजनन के समय की जांचों में जोड़ा गया जिनकी ज़रूरत उस तरह से सामान्यतः न हो, लेकिन बाज़ार के मुनाफ़ा के तौर पर उन्हें शामिल किया गया। स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने वाले ढाँचे की पित्तृसत्ता के तौर पर चर्चा में उभर कर आया कि अगर कोई महिला/लड़की अपनी यौन सम्बंधी समस्याओं के लिए अस्पताल जाती है तो उसे ठीक से जानकारी नहीं दी जाती, बल्कि उसको मात्र प्रजनन की समस्या के निदान के तौर पर इलाज बताए जाते हैं, यौन शिक्षा को शिक्षा व्यवस्था में न शामिल करना भी पित्तृसत्तात्मक समझ को प्रदर्शित करता है और इसका सबसे ज़्यादा दुष्प्रभाव महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ता है। स्वास्थ्य से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर चर्चा के उपरान्त दीपा ने सभी सहभागियों को ३ समूहों में बांटा। तीनों समूहों को पिछले तीन दिनों में उठे मुद्दे को ध्यान में रखते हुए अस्पताल में जाने पर होने वाले अनुभवों पर पांच मिनट के नाटकों को तैयार करके प्रस्तुत करने का समूह कार्य दिया। तीनों समूहों द्वारा किए गए नाटकों के प्रस्तुति व उन पर हुई चर्चा में जो मुद्दे उठकर आए वे इस प्रकार थे–

समूह एक का नाटक

नाटक व उस पर हुई चर्चा ने धर्म, जाति, आर्थिक स्तर (वर्ग) का स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुंच पर प्रभाव, स्वास्थ्य संस्थाओं में काम करने वालों के व्यवहार कर मानसिकता, तथा निजीकरण का स्वास्थ्य सविधओं पर असर तथा भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों पर प्रकाश डाला।

समुह दो का नाटक

नाटक व चर्चा में समाज की महिला की यौनिकता की पितृसत्तात्मक समझ, महिला/लड़की पर मानसिक दबाव व चारित्रिक लक्षण का डर, अस्पताल में काम कर रहे लोगों की पितृसत्तात्मक सोच, यौन शिक्षा के अभाव, मीडिया द्वारा महिला पर परिवार नियोजन के ज़िम्मेदारी दिए जाने जैसे मुद्दे सामने आए और यह भी उभर कर आया कि महिला के स्वास्थ्य को मात्रा जैविकीय पुनः उत्पादन से जोड़ कर देखा जाता है।

समूह तीन का नाटक

नाटक व उस पर हुई चर्चा द्वारा उठे मुद्दों के तौर पर सामने आया- समाज (गाँव समाज) की पद व्यवस्था का स्वस्थ्य व्यवस्था ढांचे पर प्रभाव, लोगों के आर्थिक स्तर के आधर पर स्वास्थ्य सुविधाएं देने में भेदभाव। निजीकरण का स्वास्थ्य सुविधाओं पर प्रभाव, डॉक्टरों द्वारा अपनी नैतिक जिम्मेदारियों (Professional ethnics) से विमुख होना आदि।

तीनों ही नाटकों में तीन दिन से जेण्डर पर हुई चर्चाओं को स्वास्थ्य के ढाँचे व स्वास्थ्य के ढाँचे व स्वास्थ्य सुविधाओं के हालात से बखूबी जोड़ा गया।

सत्र के अन्त में चर्चा को समेटते हुए दीपा ने महिला स्वास्थ्य को स्वास्थ्य के अध्किार के साथ जोड़ा। और राज्य की जन के स्वास्थ्य के प्रति जवाबदेयी पर सवाल खड़ा किया।

स्वास्थ्य और नारीवादी नज़रिया

स्वास्थ्य के सवाल को सिर्फ मेडिकल/चिकित्सा के नजरिये से देखना काफ़ी नहीं है। इसमें विभिन्न सामाजिक पहलु भी शामिल हैं जो स्वास्थ्य को अलग-अलग दिशाओं से परिभाषित करते हैं। मसलन नारीवादी विश्लेषण के तहत इस बात को उजागर करना बहुत ज़रूरी है कि किस तरह प्रजनन सम्बन्धी मामलों में ही महिला स्वास्थ्य के सवाल को देखा जाता है। इससे जहाँ राज्य के लिए स्वास्थ्य के सामयिक सवाल से बचना मुमकिन हो जाता है, वहीं दूसरी तरह समाज की पितृसत्तात्मक सोच भी ऐसी प्रवृत्ति को स्वीकार्यता प्रदान करती है। यानि स्वास्थ्य, पितृसत्ता और राज्य का बहुत ही करीबी रिश्ता है। सबके लिए स्वास्थ्य सेवा की माँग तभी सफल हो पायेगी जब यह पितृसत्ता विरोधी संघर्ष का भी हिस्सा बनेगी और सामाजिक जीवन के ऐसे अनदेखे पहलुओं को भी इसके अंतर्गत लाएगी।

27 अप्रैल, सुबह का सत्र

राज्य द्वारा महिला पर दबाव

उमा चक्रवर्ती

इस सत्र में उमा चक्रवर्ती ने राज्य के महिला मुद्दों पर रुख व महिलाओं पर राज्य के इस रुख व नीतियों से पड़ने वाले दबावों की चर्चा की। उमा जी ने कहा कि आज नागरिक समाज व महिलाओं पर सरकार के दबाव व रवैये को समझने के लिए इतिहास में जाने की ज़रूरत है। स्वातंत्रयोत्तर भारत के इतिहास में राज्य के स्वरूप व रवैये पर बात करते हुए उमा ने कहा कि स्वातंत्रयोत्तर भारत की सरकार के बारे में लोगों के बीच यह समझ थी कि यह सरकार हमारी है और हमारी खुशहाली के लिए काम करेगी, लेकिन भारत की स्वतंत्रता के २०-२५ सालों के अन्दर ही लोगों की इन उम्मीदों पर पानी फिरने लगा और आमतौर पर यह राय उभर कर आई कि सरकार व राज्य लोगों से अलग है। हिन्दुस्तान के विभिन्न हिस्सों में मंहगाई, भ्रष्टाचार के खिलाफ़ आन्दोलन होने लगे। इस सबको दबाने के लिए सरकार ने ७० के दशक में पूरे देश में आपातकाल घोषित कर दिया। इससे मध्यम वर्ग जो अभी तक सरकार को अपना मानता था वह दंग रह गया। बड़े पैमाने पर नागरिक हक़ों का दमन होने लगा। संवैधानिक अधिकारों जैसे बोलने की आज़ादी लिखने की आज़ादी पर रोक लगा दी गई। लोगों के नागरिक अधिकार छीन लिए गए। मध्यम वर्ग के बहुत सारे लोगों को जेल में डाल दिया गया। तब पहली बार लोगों को अनुभव हुआ कि स्वतंत्रयोतर जिस सरकार/राज्य को वह अपना मान रहे थे वह दमनकारी है। सरकार संविधानोत्तर शक्तियों का प्रयोग कर अपनी मनमानी कर रही थी- लोगों को विस्थापित किया जा रहा था, जनसंख्या नियंत्रण के नाम पर ज़बरदस्ती लोगों की नसबंदी की जा रही थी। देश में लोगों के सामान्य स्वास्थ के लिए सुविधाएं नहीं थीं, किन्तु परिवार नियोजन का दबाव पहले आ गया था। एक भयावह माहौल था एक लोकतांत्रिक देश में राज्य की तरफ से लोगों के दमन का यह स्वरूप पहली बार देखा गया था। इससे पहले लोगों में आपातकालीन स्थिति का अनुभव नहीं था। आपातकाल की यह स्थिति पूरे देश में लगभग २ साल चली। उसके बाद लोकसभा चुनावों की घोषणा हुई और तात्कालीन सरकार को जनता ने हटा दिया, क्योंकि पूरे देश के स्तर पर राज्य एक साथ दमन कर रहा था और एक ही मुद्दे पर पूरे देश के लोगों ने एकत्र होकर उसका विरोध किया, किन्तु आज स्थिति में थोड़ा अन्तर है राज्य आज भी दमनकारी रूप में सामने आता हैं, किन्तु लोगों को एक ही मुद्दे पर एक साथ लाना मुश्किल है। शाह रिपोर्ट के

अनुसार पूरे देश में अब उस तरह का आपात्काल नहीं आएगा, पर अलग-अलग राज्यों में आपात्काल आते हैं। आपात्काल की स्थिति से निकलकर दो बड़े आन्दोलन ७० के दशक के अन्त व ८० के दशक के शुरूआत में उभरे।

» लोकतांत्रिक/अधिकार आन्दोलन जिसे अब मानव अधिकार कहा जाता है।

» नारीवादी आंदोलन

जनतांत्रिक अधिकार आंदोलन राज्य के दमनकारी स्वरूप को लेकर कभी भी दुविधा में नहीं रहा, क्योंकि उनके पास राज्य द्वारा दमन के सीधै केस आते थे, किन्तु महिला आंदोलन, राज्य की भूमिका को लेकर दुविधा में रही है। पित्तृसत्ता को कायम रखने में राज्य की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है इस पर महिला आंदोलन की समझ धीरे-धीरे बनी। दो मुख्य मुद्दों पर महिला आन्दोलन शुरू हुआ। यह बलात्कार नहीं है, क्योंकि सहमति से हुआ है जोर जबरदस्ती के चिन्ह नहीं है। मथुरा बलात्कार केस का निर्णय मध्यवर्ग व उच्च्च जाति वर्ग की समझ को सामने लाया। और महिला आंदोलन को धीरे-धीरे साफ हुआ कि जाति, वर्ग, पित्तृसत्ता का जटिल रिश्ता है। राज्य का भी पित्तृसत्ता को कायम रखने में हाथ है। अतः महिला आंदोलन ने बलात्कार के कानून पर ध्यान दिया और सुधार किया कि पुरुष को सत्यापित करना पड़ेगा कि उसने बलात्कार नहीं किया, न कि महिला को, कि उसके साथ बलात्कार हुआ है। दहेज हिंसा- इसमें सामने आया कि महिलाओं पर हिंसा परिवार में ही हो रही है। परिवार ही उत्पीड़नकारी संस्था है। आंदोलन ने दहेज के मुद्दे को लेकर निजी दायरे पर सवाल खड़ा किया और रक्षक ही भक्षक जैसे नारे सामने आए। निजी दायरे की हिंसा पर चर्चा करते हुए उमा जी ने कहा कि राज्य आपातकाल तो औरतों के लिए घर में ही है। औरतों को बोलने की आजादी अपनी इच्छा से घूमने-फिरने की आज़ादी नहीं है। औरतों पर तो हमेशा के लिए/आजीवन आपातूकाल लगा है। अतः महिला आंदोलन का रिश्ता राज्य से ऐसा था कि राज्य प्रत्यक्ष रूप से महिलाओं का उत्पीड़न नहीं करता। राज्य से महिला उत्पीड़न के खिलाफ़ लड़ने में मदद भी मिलती है।

शाहबानो के केस में निर्णय व बाबरी मस्जिद के दरवाजे खोलने व गुजरात नरसंहार जैसी घटनाओं से राज्य के साम्प्रदायिक कट्टरपंथ के प्रति प्रत्यक्ष झुकाव नजर आया। दोनों धर्मों की औरतों को चिन्हित किया गया- हिन्दु औरतें देवी जैसी दुर्गा-वाहिनी बनीं और मुस्लिम औरतें कौम की ज़िम्मेदारी के रूप में पर्दे में रहेंगी। इन घटनाओं से राज्य का साम्प्रदायिक चेहरा सामने आया किन्तु तब भी लगा यह सब कुछ राजनेताओं की वजह से है, राज्य तो इस सब से ऊपर तटस्थ है। आज के समय में साम्प्रदायिक व सामुदायिक कट्टरपंथी लोगों के निजी जीवन को भी बांध रहे हैं- हिंसा द्वारा उन पर दबाव कायम कर रहे है। जैसे- बेपर्दा होने पर गोली मारने के फतवे जारी करना और खाप पंचायतों द्वारा तय करना कि विवाह जायज है या नाजायज।

दूसरी ओर पूँजीवाद में बाजार की व्यवस्था रेशनल/तार्किक है, किन्तु उसे पता है कि संस्कृति व पित्तृसत्ता से फायदा लेने के लिए उसे कैसे शामिल करना है। अतः मीडिया व बाज़ार पित्तृसत्ता को पुनःस्थापित कर रहा है। शहरों में बहुत सारे बी.पी.ओ. खोल दिए गए और बड़ी तादाद में महिलाओं के लिए भी उसमें रोजगार के अवसर मिले हैं, किन्तु राज्य रात में महिलाओं के लिए सुरक्षा प्रदान करने की ज़िम्मेदारी लेने के लिए तैयार नहीं है। हिंसा के कई प्रकार हैं

जो महिला की जिन्दगी के हर पक्ष पर प्रभाव डालते हैं। राज्य उनकों रोकने के लिए कारगर काम नहीं कर रहा। अतः इन सब हिंसाओं में राज्य चाहे प्रत्यक्ष रूप से हिंसा करता न दिख रहा है, लेकिन इसको रोकने के लिए कारगर कदम न उठाकर राज्य के संबंध महिलाओं पर पित्तृसत्ता के दबाव को कायम रखने में दिखते हैं। अतः राज्य भी महिलाओं पर पित्तृसत्तात्मक दबाव कायम रखता है।

राज्य के प्रत्यक्ष दबाव भी देखने को मिलते हैं। जैसे– कश्मीर व उत्तरपूर्व के कुछ राज्यों में (आपफस्पा) जैसे दमनकारी कानूनों को लाना। देश की सुरक्षा के नाम पर बड़े पैमाने पर खर्च तो इसमें लगता ही है, साथ ही जो सबसे खतरनाक बात है इस विशेष शक्ति के तहत जबरदस्ती किसी को भी उठा ले जाना, शक की बिनाह पर किसी को भी मार देना आदि। इसके अन्तर्गत अभी तक अनगिनत लोग गायब हैं, कई महिलाओं के साथ बलात्कार हो रहे हैं तथा कई लोग मारे जा रहे हैं। अब पूरे देश में नहीं अलग–अलग राज्यों में बटे तौर पर आपातूकाल लगा हुआ है। देश के एक क्षेत्र के लोगों को दूसरे क्षेत्र के लोगों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। उमा चक्रवर्ती ने इस पर और बात रखते हुए कहा कि अभी तो स्थिति और विकट हो रही है। अब तो सेना खुलकर मीडिया के सामने आ रही है और कह रही है कि पहले ये (आपफस्पा) कायदा लागू करो तो ही हम वहाँ पर जाएंगे। जल, जंगल ज़मीन पर लोगों का लोकतांत्रिक अधिकार होना चाहिए, पर उस पर भी राज्य द्वारा नियंत्रण कर मल्टी नेशनल कम्पनियों (MNC's) को बेचा जा रहा है और लोगों को संसाधनों से बेदखल किया जा रहा है। राज्य द्वारा किए जा रहे इन सब उत्पीड़नों के खिलाफ़ लोग संघर्ष कर रहे हैं। इन जनतांत्रिक अधिकारों के विभिन्न आन्दोलनों में महिलाएं नेतृत्वकारी अहिंसात्मक संघर्ष की भूमिकाएं निभा रही हैं, जैसे मणिपुर की इरोम शर्मिला पिछले १२ साल से आफस्पा के खिलाफ भूख हड़ताल पर है। राज्य ने उसकी बात सुनने की बजाए उसे आत्महत्या के आरोप में जेल में डाल रखा है।

परवीना अहंगार पिछले २२ सालों से 'एसोसिएशन ऑफ़ पेरेन्ट्स ऑफ़ डिसएपियर पीपल' चला रही हैं और राज्य पर दबाव डाल रही हैं कि सेना द्वारा उठाकर ले गए लोगों–जो अभी तक गायब हैं– की जानकारी दे कि वे कहाँ हैं? राज्य जवाब देने की बजाए उन्हें मुआवजा देने की बात करता है।

उमा जी ने अपनी चर्चा के अन्त में कहा कि राज्य सुरक्षा कवच के नाम पर लोगों का उत्पीड़न कर रहा है, उन पर दबाव बना रहा है। हमें इस समझने की जरूरत है– MNC's सिर्फ़ उदारीकरण व निजीकरण से ही नहीं आ पा रहा। राज्य उनके लिए सेना का सुरक्षा कवच प्रदान कर रहा है। राज्य का एक शस्त्र है सत्ता, व सैन्य शक्ति और वह विकास व सुरक्षा के नाम पर अपने रक्षा शस्त्रों का प्रयोग कर रहा है तथा लोगों का उत्पीड़न कर रहा है। वहां मध्यम वर्ग को विकास चाहिए। उसे लगता है कि विकास आ जाएगा तो सभी के लिए खुशहाली हो जाएगी, पर यह विकास किस कीमत पर और किसके लिए आएगा इसको समझना बहुत ज़रूरी है। आज राज्य हमारे जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक हर पक्ष पर चुनौती दे रहा है।

राज्य और नारीवाद

राज्य और खासतौर पर उदारवादी राज्य के सन्दर्भ में नारीवाद की मुश्किल यह रही है कि कैसे एक ही समय में राज्य से लड़ा भी जाये और उसकी सहायता भी ली जाए। उदारवादी राज्य

साधारणतः कानूनी दृष्टि से आधुनिक होता है और सभी को समानता का अधिकार देता है। भारत जैसे समाज जो अभी भी मुख्यतः गैर–आधुनिक है और जहाँ पितृसत्ता का सबसे भयावह रूप सामने आता है, वहाँ अक्सर उदारवादी राज्य की कानून व्यवस्था ही मुक्तिदायी साबित होती है। पिछले कुछ दशक से लगातार अब राज्य दमनकारी तरीकों को अपनाने में काफ़ी चालाकी से पेश आता दीखता है। जब देखा गया कि पूरे देश में एक साथ दमनकारी नीतियों को अपनाना संभव नहीं है, तब अलग–अलग सन्दर्भ और समय के अनुसार दमन के तरीके अपनाए गए। उदाहरण स्वरूप उत्तर पूर्व के आंदोलनों को दमन करने के लिए अगर बिहार या पंजाब के सैनिकों का प्रयोग किया गया तो छत्तीसगढ़ में दमन के काम में नागा बटालियन का सहारा लिया गया। देखा जाता है कि इन सभी दमनात्मक कार्यवाहियों में औरतों को ही मुख्यतः शिकार होना पड़ता है। शायद इसी तथ्य के चलते राज्य–दमन विरोधी एक व्यापक आन्दोलन की शुरूआत करने में नारीवादी कार्यकर्ता एक अग्रणी भूमिका निभा सकती हैं, लेकिन फिर भी राज्य का सवाल अभी भी नारीवाद के सामने एक गंभीर चुनौती का विषय बना हुआ है।

27 अप्रैल, दोपहर का सत्र

महिला अधिकार व सशक्तिकरण

सेजल दण्ड

महिला अधिकार व सशक्तिकरण पर चर्चा के लिए मधु ने सेजल दण्ड को संदर्भ व्यक्ति के तौर पर आमंत्रित किया। सेजल दंड भोजन के अधिकार जैसी लड़ाईयों से जुड़ी रही हैं, आनंदी संस्था को बनाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथा उन्होंने महिला सशक्तिकरण के विषय पर पढ़ाया भी है।

सेजल दंड ने अपनी चर्चा की शुरूआत में सभी सहभागियों से प्रश्न किया कि यहां पर कितने संगठन गरीबों के साथ काम करते हैं? सभी ने हाँ में उत्तर दिया। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि कितने संगठन महिला आजीविका को लेकर काम करते हैं? वहां मौजूद बहुत से लोगों ने हाँ में उत्तर दिया। बहुत से मौजूद लोग उन संगठनों से थे जो महिलाओं के Self Help Group (SHG) चलाते हैं।

सेजल ने कहा हमें ये जानना ज़रूरी है कि यह कैसे काम करते हैं? एक तो हुआ संगठन औरतों के साथ ही काम करते हैं वह De-Sure है, किन्तु दुसरी तरफ़ से होता है कि औरतों के अलावा और कोई काम के लिए / आंदोलन के लिए खड़ा ही नहीं होता वह Des-fecto है। बहुत सारी जगह संगठन पुरुषों के साथ काम करने निकले थे, उनके SHG बनाने, किन्तु या तो पुरुष आए नहीं या फिर पैसा वापिस नहीं आया। इसी संदर्भ में सेजल ने मनरेगा एवं भोजन का अधिकार पर चर्चा की। दोनों ही आंदोलनों का इतिहास देखें तो दोनों एक साथ शुरू हुए। पैसा किसको व कितना मिलता है यह तो अलग बात है, किन्तु शारीरिक श्रम करने में भूमिका महिलाओं की ज़्यादा रही है।

देश में चल रहे जितने भी महत्वपूर्ण आन्दोलन है उसमें बढ़ चढ़ कर भागीदारी लेने और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए कौन आगे आ रहा है? महिलाएं! उदाहरण के लिए ज़मीन के आन्दोलन, नर्मदा का आंदोलन, भोपाल का आंदोलन आदि सभी में शुरूआत करने वाली, लड़ाई लड़ने वाली महिलाएं रही हैं। सभी आन्दोलन महिलाओं की शक्ति, अहसास व समझ से बने हैं। यह सब जुड़े हैं आजीविका के मुद्दे से।

सेजल ने अपनी चर्चा को एक दिशा देते हुए कहा कि अगर महिला अधिकारों व सशक्तिकरण को समझना है तो आजीविका पर काम करना व उसे समझना अत्यन्त आवश्यक है। महिला आजीविका की लड़ाई लड़े बिना महिलाओं के अधिकार व सशक्तिकरण मुश्किल है। इसके साथ ही उन्होंने संगठनों द्वारा महिला आजीविका पर होने वाले कामों व राज्य द्वारा महिला श्रम व आजीविका के प्रश्न को देखने के नजरिए की आलोचनात्मक चर्चा की। सेजल ने कहा कि महिलाओं की आजीविका पर जो काम हो रहे हैं और महिलाओं की जो (Lived reality) वास्तविक स्थिति है उसमें अन्तर है और उस अन्तर को समझना ज़रूरी है।

संस्थाओं व संगठनों द्वारा महिलाओं के SHG बनाए जा रहे हैं, उन्हें माइक्रो फ़ाइनेन्स दिए जा रहे हैं अपनी आजीविका शुरू करने के लिए, किन्तु उसके द्वारा महिलाएं किस तरह का काम कर पा रही हैं? देश के विकास में महिलाओं के श्रम व काम को कहां आंका जाता है? राज्य द्वारा महिला सशक्तिकरण के कार्यों को किस नजरिए से किया जा रहा है? यह सब सवाल खड़े होते हैं जिन्हें समझना ज़रूरी है। उदाहरण के लिए महिला शिक्षा को बढ़ावा देने की सोच को सीधे इससे जोड़ा जाता है कि शिक्षित महिला बच्चे की खुराक व स्वास्थ्य का ठीक से ध्यान रखेगी। एक अच्छे परिवार के लिए महिला का शिक्षित होना अनिवार्य है। इस तरह के उदाहरणों से राज्य की महिला सशक्तिकरण की पित्तृसत्तात्मक समझ साफ़ झलकती है। राज्य की विकास की समझ और उसके आधार पर लोगों की आजीविका के आकलन का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए सेजल ने कहा राज्य देश के विकास को आर्थिक विकास के पूरक मानता है और लोगों की आजीविका का आकलन विकास व आर्थिक वृद्धि से जोड़कर देखा जाता है। महिला की आजीविका की कल्पना व आकलन भी आर्थिक वृद्धि व विकास से तय होता है। राज्य का आर्थिक विकास को मापने का तरीका- सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में बढ़ोतरी हो रही है या नहीं, वित्तीय बाजार में पैसा घूम रहा है या नहीं आदि है। इसे एक चार्ट के जरिए समझाते हुए सेजल ने बताया कि कैसे लोगों की आर्थिक विकास में भागीदारी को मापा जाता है तथा उसमें महिलाओं की स्थिति क्या है?

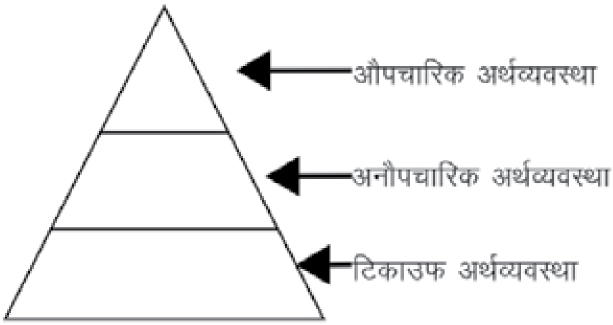

उपरोक्त चार्ट/पिरामिड से यह साफ़ किया कि महिलाओं द्वारा किया गया ज़्यादातर श्रम टिकाऊ व अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में सहयोग करता है। तथा अर्थव्यवस्था की वृद्धि का आकलन मुख्यतः औपचारिक अर्थव्यवस्था के आधार पर किया जाता है। अगर हम महिलाओं के कामों का आकलन करे तो वह एक साथ कई तरह के काम करती है- किन्तु उनके काम को अर्थव्यवस्था में टिकाऊ अर्थव्यवस्था में आंका जाता है। उसकी कोई आर्थिक कीमत नहीं आंकी जाती। तथा अनौपचारिक क्षेत्र को भी अगर देखें तो घर से बाहर निकल कर महिलाएं इसमें काम कर रही, है, किन्तु यहां पर भी कोई सामाजिक सुरक्षा उन्हें मुहैया नहीं करवाई जाती।

सेजल इस आकलन की आलोचना में कहती है कि राज्य की चिन्ता महिलाओं को औपचारिक अर्थव्यवस्था में लाने की तो रहती है, क्योंकि मात्र ५% महिलाएं ही औपचारिक अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष रूप से भागीदारी करती हैं, किन्तु महिलाएं जो काम पहले से ही कर रही हैं, जैसे 'घरेलू काम', उसे सही स्वीकार्यता नहीं दी जाती, लेकिन यह काम आजीविका की समझ से जुड़ते हैं।

ज़्यादातर औरतें अनौपचारिक क्षेत्रों में काम करती है, किन्तु इस क्षेत्र के मज़दूरों की ज़िम्मेदारी के लिए कोई आगे नहीं आता। जो मूलभूत सामाजिक सुरक्षा मज़दूरों को मिलनी चाहिए वह अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूरों के लिए मुहैया नहीं है। न ही काम की जगहों पर पालना-गृहों की व्यवस्था है। सरकार की खुद की नीतियां एक दूसरे से विरोधी (Contradictory) है। एक तरफ़ सरकार द्वारा बार-बार यह कहा जाता है कि ६ माह तक बच्चे को माँ का दूध पिलाना चाहिए, किन्तु वहीं दूसरी तरफ़ अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाली माँ को इस संदर्भ में कोई सुविधा नहीं दी जाती।

इन दोनों मुद्दों को लेकर सेजल ने सुझाव दिए कि एक तो मातृत्व अवकाश अनौपचारिक क्षेत्र में भी होने चाहिए। दूसरा पालना-गृह की व्यवस्था सभी कार्यस्थलों पर होनी चाहिए चाहे वह मात्र पुरुषों के कार्यस्थल हों। इसके द्वारा यह सुनिश्चित करने की दिशा में बढ़ा जाएगा कि बच्चों का पालन-पोषण मात्रा औरतों की ज़िम्मेदारी नहीं है।

चर्चा को आगे बढ़ाते हुए सेजल ने कहा कि महिलाओं के काम को आंकने में मात्र उसके प्रत्यक्ष आर्थिक पैमाने न अपनाकर उसके सामाजिक महत्व व अप्रत्यक्ष आर्थिक फ़ायदों के आकलन की भी ज़रूरत है। इस आधार पर कहें तो जब हम काम करते हैं तो हमें देखना होगा कि महिलाएं क्या काम कर रही हैं? उनकी चुनौतियां क्या है? और आजीविका की बहस को आमदनी/आर्थिक वृद्धि के अलावा सामाजिक सुरक्षा व सम्मान के साथ भी जोड़कर देखना चाहिए। महिलाओं की आजीविका पर सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक ढांचों के प्रभाव पर चर्चा में सेजल ने सबसे पहले राजनैतिक व आर्थिक ढांचों की बात की। सेजल ने कहा कि सरकार अन्तर्राष्ट्रीय सुप्रास्टेट के दबाव में कई सारी मूलभूत सुविधाओं-स्वास्थ्य, खाद्य आदि में सब्सिडी कम कर रही है जिसका सीधा असर टिकाऊ अर्थव्यवस्था पर पड़ता है, जिससे महिलाओं के लिए परेशानी व कठिनाइयां और बढ़ जाती हैं, जिससे महिलाओं में अस्वास्थ्य, कुपोषण, मानसिक तनाव जैसी समस्याएं फलीभूत होती हैं। उदाहरण के तौर पर खाद्य सुरक्षा कानून पर चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि राशन की सामग्री देना या उसके बदले में पैसा देना दोनों में काफ़ी अन्तर है। खाद्य सामग्री उपलब्ध करवाने से उसके इस्तेमाल में महिलाओं का अधिकार ज़्यादा बन पाता है, किन्तु पैसा देने पर दो समस्याएँ है- (१) एक वो पैसा किसके हाथ में आएगा व कैसे खर्च किया जाएगा, यह निर्णय परिवारों में औरतों के पास नहीं होता। (२) दूसरे पैसा बाजार पर निर्भर कर देगा और मुद्रा स्पफीति का खाद्य सुरक्षा पर असर पड़ेगा।

सेजल ने मूलभूत सुविधओं का अध्किार कैसे आजीविका की लड़ाई है, इस पर जोर दिया, क्योंकि इसका सीधा असर महिला के स्वास्थ्य, व बेहतर जीवन पर पड़ता है। इसको और स्पष्ट करने के लिए उन्होंने 'Pathways to Employment' से 'नागावली की कहानी' ली। उसके जरिए महिला आजीविका, व सशक्तिकरण पर प्रभाव डालने वाली विभिन्न संस्थाओं व ढाँचों की चर्चा की। इसके अन्दर उन्होंने एक सुतली की सहायता से एक पूरे जाल को समझाने की कोशिश की जो महिला आजीविका को प्रभावित करता है। इस चर्चा में सामने आया कि महिला आजीविका को प्रभावित करने वाली मुख्य संस्थाएं थीं-परिवार, वर्ग, समुदाय, धर्म, कानून, राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं (सुपर स्टेट), जाति, पित्तृसत्ता आदि।

अपनी चर्चा को समेटते हुए सेजल ने कहा कि एक तो महिला अध्किार व सशक्तिकरण के लिए महिला आजीविका को समझना ज़रूरी है। दूसरा महिला आजीविका को प्रभावित करने वाले पूरे संजाल को समझकर तोड़ने/बदलने का काम करना होगा। तभी हम सही मायने में महिलाओं को सशक्त कर पाएंगे।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ

महिला सशक्तिकरण सीधे तौर पर महिला आजीविका के सवाल से जुड़ा हुआ है, लेकिन समस्या यह रहती है कि अक्सर आजीविका को संगठित क्षेत्र के सन्दर्भ में ही समझा जाता है यानिकि असंगठित और टिकाऊ (unorganized and subsistence sector) क्षेत्रों में महिलाओं का जो योगदान है – जहाँ बहुसंख्यक महिलाएँ काम करती हैं और जहाँ अक्सर काम का मूल्य पैसे के हिसाब से नहीं लगाया जा सकता, वह ध्यान से परे ही रह जाता है। उसी तरह लिंग आधारित श्रम विभाजन की भी आलोचना करना ज़रुरी है। महिलाओं द्वारा किए गए ऐसी सभी कामों के महत्व को आजीविका की बहसों के केन्द्र में रखा जाना चाहिए। एक ऐसी समाज का निर्माण जहाँ उत्पादन बाज़ार और मुनाफ़े के लिए न हो, बल्कि लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए हो। महिला आजीविका के लिए लड़ने के साथ-साथ ऐसे वैकल्पिक समाज की स्थापना के लिए संघर्ष के सवाल को भी ध्यान में रखने की ज़रूरत है तभी एक ऐसी अर्थनीति की स्थापना संभव हो पायेगी जहाँ काम को सकल घरेलू उत्पाद या राष्ट्रीय आर्थिक विकास के सवाल से हटाकर सम्मान, सुरक्षा और जीवन के सवाल से जोड़ के देख पाना संभव होगा।

28 अप्रैल, सुबह का सत्र

महिला आंदोलन में विकास की धाराएँ

सुनीता धर

इस सत्र में बात रखने के लिए जागोरी की निदेशक सुनीता धर को आमंत्रित किया गया था। सुनीता धर लम्बे समय से यू.एन., प्रिया और जागोरी जैसी संस्थाओं के साथ जुड़ते हुए महिला विकास के मुद्दे पर काम करती रही है। इस सत्र में चर्चा द्वारा विकास के लिए नीतियों के निर्माण व क्रियान्वयन की प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया गया। उनके द्वारा शुरू की गई चर्चा से यह उभरकर सामने आया कि महिला आन्दोलन को विकास नीतियों में हस्तक्षेप करके वैश्विक स्तर पर इसको महिला विकास के साथ जोड़ने में अपनी भूमिका निभानी चाहिए। साथ ही महिला आंदोलन के समक्ष आज के वैश्विक विकास नीति निर्माण के दौर में महिला व उसके बहुआयामी पहचानों के मसले व चुनौतियों की ओर भी इंगित किया गया।

सुनीता धर द्वारा सत्र की शुरूआत, सहभागियों की उम्मीदों द्वारा हुई मसलन वे इस सत्र में क्या जानना चाहते है। इसमें कई सारे महत्वपूर्ण मुद्दे उभरकर सामने आये। जैसे- जेण्डर के परिप्रेक्ष्य से नीतियों में क्या-क्या खामियाँ और अन्तर (gaps) है? गरीबों के मामले में (नीति-निर्माण) करते समय सरकार का कैसा रवैया रहता है? बढ़ते हुए वैश्विक दबाव व वैश्विक सहयोग के चलते नीतियों के निर्माण में किन-किन बातों का ध्यान रखा जाता है या रखना चाहिए? सही विकास नीतियां कैसी होंगी जो आज की स्थितियों में सकारात्मक बदलाव ला सकें?

इन सब उम्मीदों व सवालों को लेकर सुनीता ने अपनी बात शुरू करते हुए कहा कि वैश्वीकरण व उदारीकरण का एक मिला-जुला अनुभव रहा है। जहाँ एक तरफ़ इससे सरकार/राज्य पर कई सारे नियम व नीतियों को मानने के लिए अंतर्राष्ट्रीय दबाव का सामना करना पड़ रहा है। वहीं दूसरी तरफ़ CEDAW में हिन्दुस्तानी सरकार का हस्ताक्षर करना महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि CEDAW में पहली बार किसी अंतर्राष्ट्रीय मंच ने महिला मुद्दों को मानव अधिकार के रूप में रेखांकित किया गया और साथ ही साथ यह भी माना कि

उन्हें विशेष आकर्षण की आवश्यकता है यह तभी संभव हो पाया, क्योंकि विश्व के विभिन्न हिस्सों से महिलावादियों ने CEDAW में बड़े पैमाने पर शिरकत की, लेकिन सच्चाई यह भी है कि भारत इन मुद्‌दों को अपनाने में काफ़ी संकोच करता रहा और काफ़ी समय बाद ही इसे स्वीकार किया गया।

वही 'वर्ल्ड सोशल पफोरम' जैसे अंतर्राष्ट्रीय मंचों के निर्माण के साथ ही राष्ट्रीय सरहदों को तोड़कर वैश्विक न्याय, सहयोग और शान्ति के लिए दुनिया के अलग-अलग मुल्कों से प्रतिनिधि आकर एक साथ मिले और एक अन्तर्राष्ट्रीय मुहीम की कल्पना करना संभव हो पाया। ''एक दूसरी दुनिया संभव है'' यह कहते हुए इसने सामाजिक आन्दोलनों को प्रेरणा देने का काम किया।

सुनीता ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि बात महज़ वैश्विक दबाव और वैश्विक सहयोग की ही नहीं है, यहाँ यह भी समझना ज़रूरी है कि मुद्‌दों व चुनौतियों का अहिंसक तरीके से सामना किया जाए। उदाहरण के तौर पर वेदान्ता के खिलाफ़ जनता के संघर्ष व नेपाल की शान्ति-प्रक्रिया की बात हुई। सुनीता ने कहा कि हिंसा का जवाब हिंसा से ही दिया जाए, यह ज़रूरी नहीं है। ज़रूरी यह है कि सम्पदा और सुविधाएँ सबको मिलें इब तक सभी लोगों की पहुँच बनाई जाए। यह भी ध्यान देने की ज़रूरत है कि हमारी सरकार की प्राथमिकता अक्सर किन विषयों पर बनती है। खाद्यान्न सुरक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा जैसी बुनियादी ज़रूरतों से ज़्यादा ध्यान ''सैनिक सुरक्षा'' पर दिया जाने लगा है। यहाँ उन्होंने खाद्यान्न सुरक्षा के तौर पर नगद भुगतान किए जाने वाली नीति की आलोचनात्मक चर्चा की। राज्य द्वारा नीति आ रही है कि वस्तु या सेवा भुगतान से कारगर व बेहतर नगद भुगतान होगा लेकिन नगद भुगतान होने से मुद्रास्फीति होने पर गरीब जनता पर बोझ पड़ेगा। नगद भुगतान वस्तु भुगतान के साथ-साथ चल सकता है, न कि उसे वस्तु भुगतान के बदले में लाया जाए।

इसके साथ ही हाशिए पर रह रहे जन समुदायों के मुद्‌दों व ज़रूरतों को विकास की नीतियों में नज़रअंदाज करने व विशेष सत्ताधरी समूहों के अनुरुप बन रही नीतियों का विश्लेषण भी किया गया। यह रेखांकित किया गया कि नीतियों की ज़रूरतमन्द तक सही पहुँच अभी भी एक बड़ी समस्या बनी हुई है।

महिला, बच्चों, बूढ़े आदि को अब कम सुविधाएं मिल रही हैं। पिछड़े वर्गों की सामाजिक सुरक्षा की ज़िम्मेदारी को राज्य ऩजरअंदाज कर रहा है।

समकालीन दक्षिण एशिया की आर्थिक छवि की बात करते हुए एक भयंकर तस्वीर सामने आई। जिसके अन्तर्गत सुनीता ने साईनाथ के लेखों का ज़िक्र करते हुए वर्तमान दौर के कुछ तथ्यों व आंकड़ों की बात की-

आज की दुनिया कुछ मामलों में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से भी खराब हालात में है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवार

लगातार पिछले ११ सालों से बढ़ रहे है। (देखें परिशिष्ट ४)

हिन्दुस्तान के ७७% लोग प्रतिदिन २० रुपये में जीते है।

सिर्फ़ २०% लोग ८०% सम्पदाओं पर नियंत्रण करके बैठे हैं।

हर साल हमारी सरकार पूंजीपतियों को ५,००,००० करोड़ की सब्सिडी देती है। इससे कहीं कम धन में ही सभी लोगों के लिए खाद्यान्न सुरक्षा निश्चित की जा सकती है।

विकास की गलत नीतियों के चलते देश के बहुत सारी जगहों में किसानों की आत्महत्या की बात भी सामने आई है- जैसे महाराष्ट्र व गुजरात।

ग्रामीण कृषि संकट के साथ प्रवासन की समस्या पर भी जो नीतियाँ बनी उनमें भी हाशिए के लोगों को नज़रअंदाज किया गया। पिछले दस सालों मे गाँव से शहरों में प्रवास की गति तीव्र रही है। यह कृषि के संकट का ही एक इशारा है शहरों में रहने की कोई व्यवस्था नहीं इसलिए झुग्गी-बस्तियों का इजाफ़ा हुआ है। ग्रामीण इलाकों में मूलभूत ज़रूरतों पर सरकारी खर्च कम होता गया है।

संसाधनों पर नियंत्रण में महिलाओं के मामले में तो यह आंकड़े और भी चिंताजनक हैं। यू.एन. वुमेन की रिपोर्ट का हवाला देते हुए उन्होंने बताया-

☞ महिलाएं ६०% काम करती हैं और सुविधाओं तक उनकी पहुँच १% भी नहीं है। वर्कफ़ोर्स में महिलाओं की भागीदारी ३२.८% व पुरुषों की ८१.१% के आंकड़े है, गौर करने वाली बात है कि इसमें घर में किए जाने वाले काम की गिनती नहीं है।

☞ महिलाओं को सवैतनिक काम में अक्सर कम वेतन वाले काम मिलते हैं।

☞ गाँव में अकृषि क्षेत्र में भी महिलाओं का स्व-रोजगार (Self Employment) बढ़ रहा है।

☞ वेतन के संदर्भ में जेंडर-भेद बढ़ा है। अक्सर सार्वजनिक सेवाएं में भी महिलाओं के अवैतनिक (unpaid) श्रम पर निर्भर रहती है।

इस सन्दर्भ में यह महत्त्वपूर्ण है कि हमारे देश में ११ वीं पंचवर्षीय योजना के साथ ही जेण्डर बज़टिंग की ज़रूरत को रेखाकित किया गया है। इसमें भी ध्यान देने की बात है कि अल्पसंख्यक महिलाओं के लिए अलग से कोई पॉलिसी/नीति नहीं है। कोई बजट में विशेष प्रावधान नहीं है। छात्राओं के लिए मात्रा थोड़ी बहुत छात्रवृत्ति आदि का प्रबंध है। अतः जेण्डर बजटिंग में कुल मिलाकर १२० करोड़ से भी कम राशि का प्रावधान है, यानिकि सिपर्फ नाम मात्र का प्रबंध है।

जेण्डर बजटिंग के साथ अब शिक्षा, काम आदि के संदर्भ में महिलाओं की बात हो रही है, लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अभी भी अक्सर पारंपरिक कामों के साथ ही महिलाओं को जोड़कर देखा जाता है- जैसे सिलाई, बुनाई आदि काम। इसके विपरीत सुनीता का सुझाव था कि क्यों न गैर पारंपरिक कामों में महिलाओं को प्रशिक्षण दिया जाए। जैसे दिल्ली में ही आज़ाद फ़ाउण्डेशन की तरफ़ से महिलाओं को कार ड्राइविंग सिखायी जाती है। ऐसे उदाहरणों को और बढ़ाने की ज़रूरत है। सुनीता ने यह भी स्पष्ट किया है कि सरकार के जेण्डर बजटिंग में बजट आबंटन व उस निधि के उपयोग में भी भारी अन्तर है। हाशिए के लोगों की ज़रूरतों व संख्या के अनुरूप आबंटन अभी भी कम है।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर पित्तृसत्ता के प्रभाव की ओर इशारा करते हुए सुनीता ने बताया कि सरकार का जी.डी.पी. बढ़ाने पर तो जोर है, किन्तु उसमें महिलाओं के श्रम पर समझ सीमित है। अगर हम १२ वीं योजना की ओर देखें तो पाएंगे की महिलाओं के विशेष मुद्‌दों पर राज्य की जागरुकता नहीं दिखती। साथ ही अवैतनिक श्रम के बारे में भी पित्तृसत्तात्मक समझ साफ़ तौर पर दिखाई देती है। इसी कारण महिलाएँ किस हद तक देश की अर्थव्यवस्था में योगदान दे रही हैं, यह पता नहीं चलता।

विकास नीतियों के आलोचनात्मक विश्लेषण के साथ-साथ सुनीता ने इसे हाशिए पर रह रहे लोगों की पहुँच के दायरे में लाने के लिए कुछ सुझाव व समाधान भी सामने रखे जो निम्नांकित हैं।

नीतिगत दृष्टि से देखें तो सवाल यह है कि राज्य को सभी नागरिकों को समान अधिकार सुनिश्चित करने चाहिए। औपचारिक समानता को सही अर्थो में समानता की ओर ले जाने की ज़रूरत है। संरचनाओं में मौलिक बदलाव की ज़रूरत है न कि सिर्फ़ कुछ फेरबदल की। उदाहरण के लिए सिर्फ़ इतना कह देना भर कि हम महिलाओं के लिए काम मांगते हैं- काफ़ी नहीं होगा, बल्कि यह सुनिश्चित करना होगा कि औरतों की और सारी पहचानें जैसे- उनका शादीशुदा होना या न होना उनके काम करने के परिवेश पर रुकावट न बने और काम की एक सुगम परिस्थिति उसे मिले। अक्सर यह होता है कि औरतों के बहुत सारे कामों को काम ही नहीं माना जाता, जैसे ''घरेलू काम''। इसके संदर्भ में यह ज़रूरी है कि आर्थिक नीतियों के निर्माण के समय ऐसे ''गैर-कर्मों'' को भी ध्यान में रखा जाए जो आर्थिक सिद्धान्तों में अक्सर 'काम' के तौर पर नहीं देखे जाते।

आदर्श आर्थिक नीतियों में में एक अच्छा बजट वह है जो जीविका प्रदान करने हेतु हो न कि जी.डी.पी. बढ़ाने पर लक्षित जो अनुसूचित जातियों व जन जातियों, बच्चों, बुजुर्गों व महिलाओं और उपेक्षित समूहों की खास ज़रूरतों का ध्यान रखने वाला हो, बहुमुखी हो। गरीबी कम करना उसका लक्ष्य हो। स्वास्थ्य की उन्नति के लिए सजग हो। आम लोगों की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करता हो। बेरोजगारी की तरफ़ उन्मुख न

हो जिससे उपेक्षित तबकों को दिक़्क़तों का सामना करना पड़ता है। कृषि पर खास ध्यान हो, कम से कम चार फ़ीसदी बढ़ोतरी पर लक्ष्य हो, और महिला किसानों पर जोर हो, सुविधाओं का चरित्र (Need based) न होकर अधिकारों पर आधारित हो। सरकार कहती है कि जनता को सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए धन नहीं है, लेकिन, एल सल्वाडोर, वियतनाम आदि देशों को देखें तो पता चलता है कि ये गरीब देश होकर भी अपने नागरिकों को बहुत सारी सुविधाएँ प्रदान करते हैं, जिसका खर्च जी.डी.पी. का १ से २ प्रतिशत ही होता है।

उसी प्रकार यह ज़रूरी है कि सरकार की वर्तमान कुछ नीतियों को बदला जाए। अक्सर देखा जाता है कि अन्न सुरक्षा के सवाल पर नगदी भुगतान बनाम अन्न भुगतान जैसी बहस छिड़ जाती है, जबकि देखा गया है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की योजनाएं, तभी सबसे ज़्यादा सफ़ल होती है, जब वे सार्वभौमिक (universal) होती है। जब हमारे देश में इतना भारी अतिरिक्त अनाज है तो क्यों न हम अन्न सुरक्षा की योजना को सार्वभौमिक कर दे, न कि नगद भुगतान में इसका समाधान देखे। यानि कि अधिकारों व सुविधाओं को कम करना समस्याओं का समाधान नहीं होगा।

सत्र के अन्त में सुनीता ने महिला आंदोलन के लिए चुनौतियों की ओर इशारा करते हुए कहा कि नारीवादी आन्दोलन की ताक़त व अभियान बहुत दूर तक इस बात पर निर्भर करेगा कि सरकार जिन कानूनों को पास करने जा रही है या जिन बिलों को अग्रधिकार दे रही है, उसके दीर्घ परिणामों को हम समझें। आखिर परमाणु दायित्व बिल राजनीति में ३३% महिला आरक्षण बिल से ज़्यादा महत्वपूर्ण क्यों बन जाता है?

इस चर्चा में कई सारे महत्वपूर्ण पहलु सामने आये। वैश्वीकरण के चलते एक तरफ़ अब भारत पर कई सारे अंतर्राष्ट्रीय दबाव रहते हैं, कि वह महिला सम्बन्धी विषयों पर ध्यान दे। बीजिंग का अंतर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस या विश्व सामाजिक मंच जैसी मुहिमों के चलते अब जन–आन्दोलनों का एक वैश्विक सहसम्बन्ध/तालमेल संभव हो पाया है। वहीं दूसरी तरफ़ सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्रों से राज्य लगातार अपना हाथ पीछे खींच रहा है, जिससे समाज में हाशिए पर रहने वाले लोगों पर खासा बुरा असर पड़ रहा है। इस सन्दर्भ में चुनौती यह है कि एक तरफ़ जन आंदोलनों के इस अंतर्राष्ट्रीय सामन्जस्य को कायम रखा जाए रखा जाये और भारत सरकार पर अंतर्राष्ट्रीय दबाव भी बनाये रखा जाये, लेकिन वहीं यह भी सुनिश्चित किया जाये कि सरकार सामाजिक क्षेत्रों को ज़्यादा से ज़्यादा ध्यान में रखे। सरकार की अलग–अलग विकास नीतियों को योजना निर्माण, गठन और क्रियान्पयन में भी नारीवादियों का सक्रिय हस्तक्षेप जारी रखना ज़रुरी है।

28 अप्रैल, दोपहर का सत्र

समापन सत्र

मधु बाला

''बदलते समय में नारीवादी आन्दोलन के समक्ष चुनौतियों'' को ध्यान में रखते हुए जागोरी द्वारा आयोजित पाँच दिवसीय आवासीय कोर्स ने विभिन्न संस्थाओं से आए सहभागियों के बीच एक नई सोच जगाने व नए उत्साह का प्रसार किया। कोर्स के समापन के दिन सभी सहभागी अपने-अपने कार्यस्थलों में नई समझ को साझा करने के उत्साह में थे।

कोर्स के समापन सत्र में सभी को ध्न्यवाद देते हुए मधु ने एक बार फिर सहभागियों को उनके योगदान के वादे की याद दिलाई व अलग-अलग संस्थाओं से होते हुए भी एक ही राज्य से संबंध रखने वाले प्रतिभागियों को उनके राज्यों के आधार पर विभाजित होने को कहा। समूहों से पिछले पांच दिनों के दौरान हुई चर्चाओं से निकली नई चुनौतियों व रणनीतियों के आधार पर उनकी आगामी योजना पर चर्चा कर उसे प्रस्तुत करने को कहा गया। अपनी चर्चा में स्थानीय संस्थागत स्तर, संगठित/नेटवर्क के अन्दर व राज्य स्तर की रणनीतियों पर ध्यान देने का अनुरोध भी किया।

उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड ने मिलकर अपनी कार्य योजनाओं पर चर्चा की व उसे प्रस्तुत करते हुए कहा कि-स्थानीय/संस्थागत स्तर पर-भोजन के अधिकार, सार्वजनिक स्थलों पर महिला सुरक्षा अभियान-कार्य तथा यौनिकता व स्वास्थ्य पर काम करेंगे।

संगठित/नेटवर्क के अन्दर-महिलाओं की गैर परम्परागत कार्यों तक पहुँच बढ़ाना, फ़ैडरेशन को महिलाओं की नीतियों की जानकारी तथा असंगठित क्षेत्र की महिलाओं के साथ काम करने की योजना जाहिर की।

राज्य के स्तर पर- संस्थाओं का नेटवर्क बनाने की योजना जाहिर की और महिलाओं की राज्य स्तरीय नीतियों तक पहुंच के आकलन व विश्लेषण करने को आगामी योजना का अंग बनाया। जागोरी के साथ मिलकर राज्य में सुरक्षा अभियान चलाने की संभावनाओं पर भी गौर किया।

मध्य प्रदेश के साथियों ने कम, पर सटीक रणनीतियां बनाईं जो निम्नलिखित है-

प्रशिक्षण – संस्थागत व समुदाय के तौर पर, प्रदेश में, बढ़ते हुए महिला अत्याचार विषय पर राज्य स्तरीय बैठक एवं रणनीति निर्धारण, ‘मनरेगा‘ और स्वाथ्य के मुद्दों को जेण्डर नज़रिए से समझने की कोशिश व केस अध्ययन एकत्रित कर पैरवी करने की कोशिश करेंगे।

महाराष्ट्र के साथी जो मुम्बई, पुणे, अमरावती से आए थे, उन्होंने भी अपनी कार्यनीतियों को तीन स्तरों पर प्रस्तुत किया–

स्थानीय स्तर पर–स्थानीय स्तर पर विषय, अनुभवों का आदान–प्रदान करेंगे, संस्था में प्रशिक्षण कार्यक्रम करेंगे, जिसमें नारीवादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखा जाएगा, महिलाओं के लिए संसाधनों की योजना बनाते वक्त नारीवादी दृष्टिकोण को लाने की कोशिश करेंगे, विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए और अभ्यास करेंगे।

नेटवर्क के अन्दर–संपर्क के माध्यम से नेटवर्क बनाएगे व अपने कामों को साझा करेंगे। नेटवर्किंग में जो अभियान चल रहे हैं उनमें नारीवादी विचारधारा से जुड़ेंगे।

राज्य के स्तर पर–राज्य स्तरीय विभागों में नारीवादी विषय व नीतियाँ लाने के लिए दबाव का निर्माण करेंगे।

दिल्ली की संस्थाओं से शामिल साथियों ने अपनी कार्य योजनाओं को तीन स्तरों पर विभाजित न करके सीधी ही प्रस्तुत किया। जो इस प्रकार है–

☞ महिला अधिकारों के बारे में जानकारी देना। घरेलू हिंसा, बाल शोषण के बारे में एस.पी., बी.डी.ओ., डी.सी. को लिखकर जानकारी देंगे और महिला अधिकारों की मांग करेंगे।

☞ किशोरियों के साथ तकनीकी ज्ञान पर काम करने के साथ–साथ उन्हें अधिकारों के बारे में भी बताएंगे।

☞ संस्थागत तौर पर अपने हिन्दी प्रकाशनों में सीखे गए मुद्दों को सम्मिलित करने की कोशिश करेंगे।

☞ व्यक्तिगत तौर पर घरेलू कामगार किशोरियों को उनके अधिकारों की जानकारी देंगे।

☞ युवाओं के साथ काम करने वाले, उनको जेण्डर समानता की जानकारी देंगे, गीतों, नाटकों के जरिए इन विचारों को लोगों के बीच ले जाएंगे।

नेपाल से आए साथियों ने महिला सवालों के आधार पर अपनी कार्यगत रणनीतियों का निर्माण किया। सवालों के तौर पर उन्होंने महिला हिंसा, महिला स्वास्थ्य, महिलाओं की आर्थिक सहभागिता, नए बन रहे संविधान का विश्लेषण, सुरक्षित शहर व सार्वजनिक स्थानों को चुना।

कार्यगत् रणनीतियों के तौर पर उन्होंने नेटवर्क के साथ मिलकर विविध गतिविधियाँ करने,

युवाओं व महिलाओं के साथ मिलकर सुरक्षित मातृत्व के मुद्दे पर काम करने, महिलाओं की आर्थिक भागीदारी के लिए राष्ट्रीय कार्य योजनाओं के निर्माण के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ, नेपाल सरकार पर विभिन्न संगठनों के साथ मिलकर दबाव बनाना आदि तय किया। संविधान निर्माण को नारीवादी नज़रिए से विश्लेषण करते हुए उसे जेण्डर समानता पर आधारित बनाने का दबाव डालना। सुरक्षित शहरों के लिए प्रशिक्षण व कार्यशालाओं के द्वारा युवाओं व अन्य लोगों के बीच जागरुकता लाना। गीत, कविता आदि सांस्कृतिक तरीकों का जागरूकता बढ़ाने में प्रयोग करना आदि।

सभी सहभागियों द्वारा अपने-अपने कार्यक्षेत्र के लिए प्रस्तुत रणनीतियाँ प्रकट रूप से दिख रही थीं कि सभी सहभागियों ने पाँच दिवसीय इस कार्यशाला में प्रशिक्षकों/संदर्भ व्यक्तियों व जागोरी की ट्रेनिंग टीम के साथियों के साथ मिलकर सीखने-सिखाने व सहभागिता का एक ऐसा मंच तैयार किया जहाँ जेण्डर व पितृसत्ता की अवधारणा, भूमण्डलीकरण के दौर में उसके बदलते स्वरूप, महिला हिंसा के ढांचागत कारकों, महिला सुरक्षा, महिला स्वास्थ्य, महिलाओं पर राज्य के दबाव, महिला अधिकार व सशक्तिकरण तथा महिला विकास की राज्य नीतियां आदि विषयों पर विभिन्न सत्तात्मक ढांचों को नारीवादी नजंरिए से समझा तथा इसके आधार पर सार्थक एवं व्यवहारिक रणनीतियों की ओर बढ़े।

तमाम चर्चाओं के बाद मधु व ट्रेनिंग टीम ने सभी का धन्यवाद करते हुए जागोरी की पाँच दिवसीय आवासीय जेण्डर कार्यशाला का समापन किया।

परिशिष्ट १

जेण्डर कोर्स की पृष्ठभूमि

जागोरी
JAGORI

बी–114, शिवालिक, मालवीय नगर, नई दिल्ली–110017,
फोनः 91–26691219, 26691220, हेल्पलाइनः 91–11–26692700,
ई–मेलः jagori@jagori.org, www.jagori.org